निशि-दिन रहता है
खिन्न ही चित्त मेरा।

राहुल सांकृत्यायन

साम्यवादी दुनिया और उसके ग्राम नगर, कल-कारखाने, चिकित्सालय, विद्या-लय, भाषा-भूषा आदि का शब्द-चित्र।

बाईसवीं सदी

जी सभी का लुभाती ।

बाईसवीं सदी

राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशक

साहित्य-सेवक-संघ

छपरा

प्रथम संस्करणसे

दो शब्द

सन् १९१८ ई० का अप्रैल या मईका महीना था। रात्रिके शेष प्रहर-में विश्वबन्धुका यह भ्रमण-वृत्तान्त, स्वप्न और जाग्रत दोनों अवस्थाओं-मेंसे नहीं कहा जा सकता किस अवस्थामें, दृष्टि-गोचर हुआ। उसी समय क्रमानुसार इसका एक संक्षिप्त विवरण लिख लिया गया था। किन्तु समया-भावसे उसे विस्तार-पूर्वक प्रकाशनोपयोगी न किया जा सका था। किन्तु वह संक्षिप्त विवरण एक मित्रकी असावधानीसे खो गया। कितने ही समय तक प्रतीक्षा करनेपर भी जब उसके मिलनेकी आशा बिल्कुल न रही, तब, स्मृतिसे जहाँ तक हो सका, बहुत संक्षेपमें यह निबन्ध हजारीबाग जेलमें ९-२-२४ से लिखा गया। यद्यपि मूल अंशोंमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ होगा, किन्तु बाहरी बातोंमें अनेक हेरफेर होना बिल्कुल सम्भव है।

किस अभिप्रायसे यह पुस्तक लिखी गई, एवं कहाँ तक इसमें सफलता हुई, यह पाठकों ही पर छोड़ा जाता है।

विनम्र—रा० सा०

द्वितीय संस्करण

बाईसवीं सदी १९२४ ई० में लिखी गई थी। इसके प्रथम संस्करणके समय (१९३१ ई० में) कितने ही स्थानोंपर परिवर्तनकी जरूरत जान पळी; किन्तु, लेखकने कई कारणोंसे वैसा करना नहीं चाहा। अबकी बार इस दूसरे संस्करणमें वे संशोधन कर दिये गये हैं।

इस छोटी पुस्तकमें साम्यवादी संसारका शब्द-चित्र खींचा गया है, उसके पक्ष-विपक्षमें यहाँ कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। साम्यवादपर तुलनात्मक विचारके लिये लेखककी नई पुस्तक 'साम्यवाद ही क्यों ?' देखनी चाहिए।

प्रयाग
१६-१-३५

राहुल सांकृत्यायन

१

लम्बी नींदका अन्त

ओह, इतना परिवर्त्तन ! यहाँ इतने मोटे-मोटे वृक्ष पहले कहाँ थे ? यह बळी चट्टान भी तो यहाँ नहीं थी। तब यह आई कहाँसे ? हाँ, उस शिखरसे टूटकर आई मालुम पळती है; लेकिन इस ऊँची चट्टानके बीचमें आजानेसे यह बागमतीमें नहीं गिर सकी। पर वहाँसे आई कैसे, राहमें बळे-बळे वृक्ष जो हैं ! ज्ञात होता है, ये वृक्ष पीछे उगे हैं। और ये आकृतिसे सौ वर्ष पुराने मालूम होते हैं। तो क्या मेरे आये इतने दिन हो गये—ओह-हो ! हाँ, मुझे स्मरण हो रहा है, मैं फर्वरी १९२४ में यहाँ आया था। यदि तबसे १०० वर्ष बीते, तो अब २०२४ होना चाहिये !

ओह ! अब यहाँसे उतरना भी मुश्किल है। बागमती हाथों नीचे चली गई। यहाँ वह किनारे वाली चट्टान भी नहीं है। जिस लट्ठीसे चढ़-

निज रुचिर छटा से
जी सभी का लुभाती।

द्वितीय संस्करण

बाईसवीं सदी १९२४ ई० में लिखी गई थी। इसके प्रथम संस्करणके समय (१९३१ ई० में) कितने ही स्थानोंपर परिवर्तनकी जरूरत जान पळी; किन्तु, लेखकने कई कारणोंसे वैसा करना नहीं चाहा। अबकी बार इस दूसरे संस्करणमें वे संशोधन कर दिये गये हैं।

इस छोटी पुस्तकमें साम्यवादी संसारका शब्द-चित्र खींचा गया है, उसके पक्ष-विपक्षमें यहाँ कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। साम्यवादपर तुलनात्मक विचारके लिये लेखककी नई पुस्तक 'साम्यवाद ही क्यों ?' देखनी चाहिए।

प्रयाग
१६–१–३५

राहुल सांकृत्यायन

१

लम्बी नींदका अन्त

ओह, इतना परिवर्त्तन ! यहाँ इतने मोटे-मोटे वृक्ष पहले कहाँ थे ? यह बळी चट्टान भी तो यहाँ नहीं थी। तब यह आई कहाँसे ? हाँ, उस शिखरसे टूटकर आई मालूम पळती है; लेकिन इस ऊँची चट्टानके बीचमें आजानेसे यह बागमतीमें नहीं गिर सकी। पर वहाँसे आई कैसे, राहमें बळे-बळे वृक्ष जो हैं ! ज्ञात होता है, ये वृक्ष पीछे उगे हैं। और ये आकृतिसे सौ वर्ष पुराने मालूम होते हैं। तो क्या मेरे आये इतने दिन हो गये—ओह-हो ! हाँ, मुझे स्मरण हो रहा है, मैं फर्वरी १९२४ में यहाँ आया था। यदि तबसे १०० वर्ष बीते, तो अब २०२४ होना चाहिये !

ओह ! अब यहाँसे उतरना भी मुश्किल है। बागमती हाथों नीचे चली गई। यहाँ वह किनारे वाली चट्टान भी नहीं है। जिस खुट्टीसे चढ़-

जी सभी का लुभाती।

कर मैं यहाँ आया था, वह भी पानीके वहनेसे नाली-सी हो गई। किन्तु, हाँ, पर्वतराजका यौवन तो और भी बढ़ गया है। चारों ओर हरियाली-ही-हरियाली उग आई है। और झरना !—अरे, यह तो एक छोटा-सा प्रपात ही हो गया ! वाह-वाह ! इधर तो और भी कई झरने आस-पास दिखाई देते हैं। पर बागमतीका 'कल-कल' तो वही है। दो-एक चट्टानोंके हटने और कुछ नीचे चले जानेके अतिरिक्त इसमें और कोई हेर-फेर नहीं हुआ है। किन्तु, पहलेका वह किनारेवाला वृक्ष नहीं दीख पळता ! सचमुच मेरे परिचित एक भी वृक्ष यहाँ नहीं हैं। जब यहाँ इतना परिवर्त्तन है, तो बस्तियोंमें, न जानें, क्या हुआ होगा ? बळा कौतूहल हो रहा है। देखना चाहिये, मानव-संसारने क्या-क्या रूप बदले हैं। रास्ता भीमफेरी होकर गया था। वहाँ कुछ लोग जरूर होंगे। उनसे भी कुछ पता लगेगा।

यह विचारते हुए मैंने अपनी चिर-सहयोगिनी गुफासे बिदा ली। ३५-३६ हाथ ऊपरकी अपनी गुफासे नीचे आनेमें मुझे बळी कठिनाई मालूम हुई। अरे ! मेरे कपळेका पता नहीं—वह कब सळ-गल गया ? आदमियोंमें जाना है—बदन ढाँकनेके लिए वस्त्र तो नितान्त आवश्यक है। यह विचारकर मैंने झट एक वृक्षसे बळे-बळे पत्ते तोळ, जंगली बेलसे कमरमें बाँध लिये। नीचे आनेपर नदीके किनारे-किनारे चलना ही मुझे उचित मालूम हुआ। क्योंकि मुझे सन्देह होने लगा कि वह नजदीक-वाला मार्ग साफ है या नहीं। गंगा-किनारे आते ही मेरी इच्छा पहले स्नान करनेकी हुई। सूर्यकी धूप यद्यपि सामने पळ रही थी, दिन भी

दो-तीन घंटे चढ़ आया था, लेकिन अभी थोळी पहाळी सरदी पळ ही रही थी। तो भी मैंने खूब मल-मलकर स्नान किया। नहा-धो चुकनेपर सामने कुछ परिचित फल लगें दिखाई पळे। मैंने उन्हें तोळकर खूब मतलव-भर खाया। इस तरह पेट-पूजासे निश्चिन्त हो, कदम आगे वढ़ाया।

जब पहले यहाँ आया था, तभी ६०-६१ वर्षका हो चुका था, बाल-बहुत-से पक गये थे; लेकिन अब तो ये सर्वथा सन-जैसे श्वेत हो गये थे। चिर-काल तक निराहार रहनेसे शरीर सूख गया था, किन्तु, उत्साह और फुर्ती अब भी कम नहीं थी। चलते-चलते चार-पाँच घंटे हो गये। प्रायः छः-सात कोस चलपाया होगा कि ऊपरसे तार जाते दिखाई पळे। धूपमें चमकनेसे मालूम पळा कि तार ताँवेके हैं। ताँवेके तार तब यहाँ दिखाई न पळे थे, इसलिए यह नया परिवर्त्तन मालूम हुआ। मैंनें अनुमान किया, शायद इधर कहीं विजली पैदा की जाती है, जो इन तारोंके द्वारा और जगहोंपर जाती होगी। अब आगे, आस-पास, पर्वतों-पर अनार, नारंगी और केलेके वाग दोनों तरफ दिखाई पळने लगे। कोसों तक चला आया, पर अभी कोई आदमी दिखाई न पळा। मुझे वगीचोंमें होकर रास्ता जाता मालूम पळा; विचार आया, उससे चलनेपर क्या जाने जल्दी कोई आदमी मिल जाय। मैंनें अब नदी-तट छोळ, ऊपरका रास्ता पकळा और नारंगीके वृक्षोंकी छायामें चलना आरम्भ किया। देखा; फल खूब लगे हैं और वह भी साधारण नहीं, वहुत वळे-वळे। फिर सौन्दर्यका क्या कहना है? मनमें सोचा, अगर आगे कोई रखवाला

मिले, तो पूछूं। मैं जितना ही आगे बढ़ता जाता था, मेरी उत्सुकता और बढ़ती जाती थी।

अब नारंगीके बगीचे समाप्त हो चले, सेवोंके शुरू हुए। यह बात नेपालके लिए मुझे नई मालूम पळी। सेव बहुत बळे-बळे लदे हुए थे, और बाग भी पर्वतकी ऊँचाईके साथ-साथ ऊपर चोटी तक चला गया था। जगह-जगह बरसाती पानीके नीचे गिरनेके लिए नालियाँ और नल लगे हुए थे। मोटे-मोटे नलों से पानी सब जगह पहुँचाया गया था। कहीं-कहीं पीनेके भी नल दिखाई पळते थे। रास्तेसे कुछ हटकर एकाध छोटे-छोटे टीनके मकान खळे मालूम देते थे। पर मैंने रास्ता छोळकर वहाँ जाना न चाहा। सोचा, अभी आगे चले चलें, कहीं-न-कहीं रास्तेपर ही कोई मिल जायगा।

पूरे चार कोस चलनेके बाद आखिर आदमियोंकी आवाज सुनाई दी। ज्यों-ज्यों नजदीक आता जाता था, आवाज स्पष्ट होती जाती थी। जब पास आया, तो देखा, उनमें स्त्री और पुरुष दोनोंही हैं। उनके वस्त्र बहुत ही स्वच्छ हैं; चेहरे खिले हुए हैं। मनमें विचारा, क्या ये नेपाल राज-परिवारके स्त्री-पुरुष तो नहीं हैं, जो शायद मनोरंजनके लिए यहाँ आये हैं। लेकिन ऐसी बात नहीं मालुम पळती। ये तो डलियों में तोळ-तोळकर फलोंको जमीनपर रखते जाते हैं और कुछ लोग उन्हीं फलों को सामने लिये जा रहे हैं। मालूम होता है, वहाँ वे ढेर लगाते होंगे। इसके अलावे, राज-खानदानका बीस-गजी पायजामा भी इन स्त्रियोंके पास नही है। यद्यपि इनका रंग-रूप, वेप-भूपा, शारीरिक गठन, स्वच्छता

व्यवहार उनसे कहीं ऊँचे दर्जेका है, किन्तु फर्क भी अवश्य है। ये सब-की-सब पेंट पहने हैं; इनके हाथ-पैर मोजे और दस्तानेसे ढँके हैं। पैरोंमें जूते भी हैं। इसमें अवश्य कोई रहस्य है। अच्छा, उनसे मिल कर ही पता लगेगा। और अब तो बिलकुल पास ही आगया हूँ। काममें लगे रहनेके कारण उन्होंने मुझे देखा नहीं है। लेकिन वह देखो, वहाँ एकने मुझे देख कर अपने साथियोंसे कुछ कहा। सब-के-सब क्या मेरी तरफ आँखें फाळ-फाळ कर देख रहे हैं? क्या मैं कोई जन्तु हूँ? कोई मेरे पत्तोंके कपळोंकी ओर देख रहा है, तो कोई दाढ़ीकी ओर। अच्छा, वह एक आदमी इधर आ रहा है, उसीसे सब बातें मालूम होंगी। हालाँकि आनेवाला व्यक्ति सीधे आ ही रहा था, पर मेरी उत्सुकता मुझे अधीर बना रही थी।

२

सेवग्रामका वाग

उस पुरुषने धीरे-धीरे मेरे पास आ, स्वागतं कहा। यद्यपि उसने मुझसे एक ही वार यह शब्द कहा, लेकिन मेरे कानों में, न जाने कितनी वार, उसकी आवृत्ति होती रही। इसके वाद ही वार्तालाप शुरू हुआ।

"आप कहाँसे आ रहे हैं?"

"कहीं दूरसे तो नहीं; करीव दो घंटे दिन चढ़ा था, तव मैं अपने स्थानसे चला हूँ।"

"अव," झट घळी देखकर—"तीन वजकर वीस मिनट हो चले हैं। मुझे क्षमा करेंगे, अगर मेरी वातोंमें कुछ ढिठाई हो, क्योंकि आप के दर्शनने ही जिज्ञासा-तरंगोंसे हृदयको डाँवाडोल कर दिया है।"

"जो कहना हो, निस्संकोच होकर कहो। मेरे कुतूहल भी कुछ कम नहीं हैं। यद्यपि, इस स्थानसे मेरा निवास बहुत दूर नहीं, लेकिन समयसे कुछ अवश्य है। अच्छा, यह तो बताओ, आज सन्-संवत् क्या है ?"

"सन् १००"

"कौनसा सन् ?"

"सार्वभौम। आप कौन सन् पूछते हैं ?"

"ईसवी।"

"वह है, २१२४।"

"ओ-हो! तो क्या मुझे गुफामें बैठे दो सौ वर्ष हो गये ? तभी तो सब जगह परिवर्तन-ही-परिवर्तन दिखाई पळता है। अच्छा, पूछो जो कुछ पूछना हो।"

"क्या दो सौ वर्ष आपको गुफामें बैठे हो गये ? और बैठते समय अवस्था क्या रही होगी ?"

" ६० वर्ष।"

२६० वर्ष बहुत होते हैं। मेरी अवस्था अभी ६० वर्षकी है। वृद्ध-पुरमें १०० और १२० वर्षके भीतरके कई पुरुष हैं। किन्तु आपकी अवस्थाका पुरुष अभीतक सुनने में नहीं आया। यह सब बातें मुझे और भी आश्चर्यमें डाल रही हैं; साथ ही, बहुत-कुछ पूछनेकी उत्सुकता भी उमळ रही है। किन्तु यहाँ जो मेरे साथी स्त्री-पुरुष हैं, वे भी मुझसे कम उत्सुक नहीं हैं। इसलिये क्या ही अच्छा हो, अगर उनके सामने ही आप अपनी आत्म-कथा कहें। × × × हाँ, एक बात और। अब

ऐसे वस्त्रोंका रवाज नहीं रहा; अनुचित तो न होगा, यदि आपको पहननेके लिए एक वस्त्र ला दूँ ?"

"नहीं,कुछ अनुचित नहीं। इसकी आवश्यकता मैंने भी महसूस की थी।"

उस भद्रपुरुषने, मेरा वाक्य खतम होते ही 'अर्जुन ! अर्जुन !' पुकारा; और आवाज सुनते ही एक युवक दौळा आया। उसने स्मित-मुख हो मेरा स्वागतकर अपने साथीसे पूछा—क्या है ?

"यहाँ, इस मकानमें धोती–जोळे रखे होंगे। दौळकर उनमेंसे एक यहाँ लाइये. . . .आपके पहननेके लिए।"

"बहुत अच्छा," कहकर अर्जुन दौळता हुआ गया और दो मिनट-में निहायत साफ एक धोती ले आया।

मैंने धोती लेकर कहा—"पहली बात तो यह कि चूँकि हमें बातें बहुत करनी हैं, अतः नामसे परिचित होना चाहिये। मेरा नाम विश्वबंधु है और आप अपना नाम बतलाइये।"

"मेरा नाम सुमेध।"

"तो सुमेध जी ! सहायताके लिए धन्यवाद।

"नहीं, वैसी कोई बात नहीं। अब हम लोगोंके जलपानका भी समय होगया है। आप भी थके-माँदे होंगे—भूख लग जाना भी स्वाभाविक ही है। अभी चलकर जल-पान करें और इसके बाद आत्म-वृत्तान्तसे हमें कृतार्थ करें।"

"सुमेध ! सचमुच तुम्हारे थोळेसे वार्तालापने मुझे बहुत आकृष्ट कर लिया है। इस समय मेरे आनन्दका ठिकाना नहीं। अच्छा, चलो।"

अब मुझे साथ लेकर सुमेध उस मकानकी ओर चले। इतने में यकायक तोपके गोले-की-सी आवाज हुई। पहले तो मैं चौंक गया, पीछे पूछनेपर मालूम हुआ, यह जलपानकी सूचना है। मेरी अनेक जिज्ञासाओंमें एककी और वृद्धि हुई। मैंने देखा, उधरसे वे स्त्री-पुरुष भी—जो काममें लगे थे—काम छोळकर इसी मकानकी ओर चले आ रहे हैं। मकानके पास जाकर क्या देखता हूँ, साफ पानीके कितने ही नल लगे हुए हैं। नहानेके लिए साफ जलके टब हैं। मकान बहुत स्वच्छ हैं। तीन-चार बळे-बळे कमरे हैं। एक हॉल है, जिसमें डेढ़-दो-सौ आदमी बैठ सकते हैं। कमरोंमें बहुत-सी कुर्सियाँ हैं।

मैंने बळे हॉलमें देखा, पाँतीसे कुर्सियाँ और मेज लगे हुए हैं। मेजों पर एक-एक तश्तरीमें सेव, केले अंगूर आदि कितनेही फल रखे हुए हैं और गिलासोंमें भरकर दूध। हम सब स्त्री—पुरुषोंकी संख्या करीब एक-सौ थी। मैंने उतनी ही थालियाँ वहाँ देखकर पहले आश्चर्य किया। क्या स्त्रियाँ भी पुरुषोंकी बगल में बैठकर नाश्ता करेंगी? इतनेहीमें वे सब स्त्री-पुरुष भी आ गये। सबने स्मितमुख हो स्वागत किया। महाशय सुमेधने उन्हें सम्बोधित करके कहा—

"साथियो, हमारे आजके अतिथिको देखकर सबको बळी जिज्ञासा है। फिर हमारे जैसोंकी, जिनने एकाध बात सुन ली है उत्सुकताका तो कोई हिसाब नहीं। इसीलिए मैंने अकेले ही सब सुन लेना अच्छा नहीं समझा, अभी तो सिर्फ इतना जान पाया हूँ कि हमारे विश्वबंधु जी १९२४ से ही, यहाँसे १०–१२ कोसकी दूरीपर जमे हुए थे, जहाँसे आज ही आ रहे हैं।"

इतना सुननेपर नर-नारियोंका कौतूहल और भी उत्तेजित हुआ, पर जलपान करनेका समय बीत रहा था। इसलिए सबने हाथ-मुंह धोकर अपना-अपना आसन ग्रहण किया। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अर्जुनने मेरे जलपानकी थाली परोसनेको धोती ले जाते समय ही कह दिया था। सुमेधने मुझे एक कुर्सीपर बैठाया और पास ही स्वयं भी बैठ गये। उनके समीप ही एक महिला बैठी थीं, जो, आगे चलकर मालूम हुआ कि, उनकी साथिन सुमित्रा थीं। परोसनेवालोंने अपना काम समाप्तकर, स्वयं भी एक-एक आसन ग्रहण किया। अब सबका नाश्ता शुरू हुआ। मैंने भी एक कतरा सेव मुखमें डाला। मुझे उसकी मधुरता और सरसता अद्भुत मालूम हुई। मैंने तो उस समय यही समझा कि शायद चिरकालके बाद खानेसे यह इतना स्वादिष्ट मालूम हो रहा है, किन्तु पीछे मालूम हुआ कि, यह वैज्ञानिक रीतिसे फलोंकी खेती होनेका परिणाम है। मुझे अधिक भूखा समझकर कुछ ज्यादा फल दिया गया था। उसमें नारंगीकी भी कुछ फाँकें थीं। नेपालकी नारंगी पहिले भी खाई थी, लेकिन इतनी मधुर और सुस्वादु नहीं। बीजका तो पता ही नहीं था, रेशे भी नदारद। अंगूरोंके दाने बनारसी बेरोंके बराबर थे। मैंने पूछा—"ये अंगूर कहाँके हैं?"

सुमेधने बतलाया—"यहाँसे चार कोसके फासले पर इसका बाग है।"

"क्या नेपालमें भी अंगूर होता है?"

"बहुत। इसको तो सैकड़ों वर्ष हो गये। सारे बिहार, उड़ीसा, आधे बंगाल, काशी और अवध-प्रान्तको यहींसे अंगूर जाता है।"

"जीवित ही नहीं, बल्कि आज उस विद्यालयके मुकाबलेमें संसारमें शायद ही कोई दूसरा विद्यालय हो। दर्शन, ज्योतिष, भाषा-विज्ञान, इतिहास और राजनीतिके लिए नालन्दा अद्वितीय है।"

मैं जिस समय नालन्दा विद्यालयके उत्कर्षको सुन रहा था, मेरे आनन्दकी सीमा न थी, हृदयमें आनन्दका सिन्धु तरंगें मार रहा था। श्रोतागण भी इस परिचयसे बहुत प्रभावित दीख पड़े। सब-के-सब मेरी ओर एक ऐसी दृष्टिसे देख रहे थे, जिसमें प्रेम और सम्मानका भाव था। अब मेरी ज्ञातव्य बातें उन्हें मालूम ही हो चुकी थीं। मैंने उनकी बात जाननेके लिए अपनी राम-कहानीका यों शीघ्र अन्त कर दिया—

"कोई तीस वर्ष तक विद्यालयकी सेवा करनेके बाद मैं उत्तराखंड घूमने आया। उस गुफामें, जो यहाँसे १२-१३ कोसपर है, पहुँचकर मुझे मूर्छा या नींद आ गई, और अब तक वहीं पड़ा रहा। बस, यही मेरी संक्षिप्त कथा है। अब आप लोग बतलायें, आपकी जन्मभूमि कौन-सी है, क्योंकि आपकी भाषा तो नेपाली नहीं मालूम होती।"

"अब उस नेपाली भाषाको तो आप कहीं बोली जाती न पायेंगे। हाँ, पुस्तकालयोंमें उसकी पुस्तकें अवश्य पाई जायँगी। अब सारे भारतवर्षमें एक-ही भाषा बोली जाती है। हम सबका जन्म एक ही जगह नहीं हुआ है। यद्यपि मेरे पिताका जन्म काठमांडोका था, लेकिन नालन्दा विद्यालयमें शिक्षा समाप्त करनेपर उन्होंने गया जिलेके शाक-ग्रामको अपना कार्य्य-क्षेत्र बनाया। मेरा जन्म वहींका है। अभी मेरे पिता जीवित हैं और आज-कल माताके साथ हजारीबागके वृद्ध-ग्राममें रहते हैं। उनकी

सारे भूमंडलमें आपका चित्र और समाचार पहुँच जायगा। आपके यहाँ आने पर मैं तो स्वागतके लिए हाजिर रहूँगा ही, इस समय आपको अधिक कष्ट नहीं देना चाहता। आप थके-माँदे होंगे—विश्राम करें।"

मैंने देवमित्रकी बातोंको यद्यपि आश्चर्यसे सुना, किन्तु मनको समाधान किया, यह सब विज्ञानके चमत्कार हैं। बहुत दिनके बाद चलनेसे सचमुच मेरे पैरोंमें थकावट मालूम होती थी, किन्तु निद्रा नहीं। अभी लेटनेका विचार करही रहा था, कि खुले किवाळसे दूसरे कमरेमें देखा, एक आलमारीमें, और उसके पासके मेजपर कुछ किताबें हैं। मेरी उत्सुकताने मुझे पलंगकी ओर कदम बढ़ाने न देकर उधर आकृष्ट किया। जाकर देखता हूँ, आलमारीमें बहुत ही सुन्दर जिल्दोंसे सज्जित किताबें रखी हुई हैं। पासकी एक कुर्सीपर बैठकर, मैंने मेजसे एक किताब उठाकर देखी। किताबमें मामूलसे कुछ अधिक वजन मालूम हुआ। खोलकर देखा तो चाँदीके रंगके-से किसी धातुके पन्ने हैं। छपाई-सफाई अतीव सुन्दर। मेरे दिलमें इच्छा हुई, देखूँ, कहाँकी छपी है। देखनेपर ज्ञात हुआ, नालंदा प्रेसमें २०२४में छपी है। आज १०० वर्ष छपे हो गये, लेकिन देखनेसे मालूम होती है, बिलकुल अभी प्रेससे आई है! खोलनेपर, उसके पन्ने निहायत बारीक दीख पळे। एक इंचमें प्रायः तीन हजार पृष्ठ रहे होंगे। मुझे पग-पगपर वर्त्तमान जगतकी सभी घटनायें आश्चर्य-जनक मालूम होने लगीं। मैंने विचारा, पहले यह देखना चाहिये कि कौन-कौनसी पुस्तकें हैं। मेजपर एक ओर मोटे अक्षरोंमें सूचीपत्र-अंकित एक गुटका देखी। देखनेसे ज्ञात हुआ, इतिहास, वनस्पति-विज्ञान, साहित्य और भूगोल-

सम्बन्धी यहाँ दो-सौ पुस्तकें हैं। भाषाके विचारसे अधिकतर पुस्तकें हिन्दी-की थीं। कुछ पुस्तकें सार्वभौम भाषामें भी थीं और एक-दो अंग्रेजीकी भी। मैंने जिसे उस समयके लिए सबसे उपयुक्त समझा, वह था—सार्वभौम राष्ट्र-संगठनका इतिहास। उसे उठाकर मैं कुर्सीपर जा बैठा। पुस्तककी छपाई आदि अद्वितीय थी। छपी भी इसी वर्षकी थी। लेखक नालन्दा-विद्यालयके एक इतिहासज्ञ, अध्यापक विश्वामित्र थे। मैंने विचारा, दो-ढाई हजार पृष्ठोंवाली इस पुस्तकका एक घंटेमें पढ़ना मुश्किल है, अतः विषय-सूचीही देख लूँ।

सूची देखनेसे, १९२४के बादकी मोटी-मोटी बातें जो मालूम हुईं, वे यह हैं—ब्रिटिश छत्र-छायामें भारतको स्वराज्य १९४० तक, संयुक्त एशिया राष्ट्र १९९० तक, संयुक्त एशिया-अफ्रिका-आस्ट्रेलिया राष्ट्र २००० तक, संयुक्त यूरोप-अमेरिका राष्ट्र २०१० तक, भूमंडलका एक राष्ट्र २०२४ तक। मैंने कहा, देखूँ, आजकल अखिल भूमंडलका राष्ट्रपति कौन है। मैंने इसके लिए पुस्तकका अन्तिम अध्याय देखा; जिसमें नामोंके साथ उन व्यक्तियोंके चित्र, जन्मस्थान और शिक्षास्थान भी दिये गये थे। सम्पूर्ण भूमंडलके राष्ट्रपति अगले तीन वर्षोंके लिए श्री दत्त चुने गये हैं, जिनका जन्मस्थान भारत ही है। शिक्षा उन्होंने तक्षशिलामें पाई। अवस्था चौहत्तर वर्षकी है। प्रधान मंत्री ओहारा एक जापानी सज्जन हैं। शिक्षा-मंत्रिणी मोनोलिन एक रूसी महिला, स्वास्थ्य-मंत्री डेविड एक अमेरिकावासी, इसी प्रकार और-और विभागोंके भी मंत्री भिन्न-भिन्न देशोंके लोग हैं। मैंने खूब गौर करके देखा, तो भी वहाँ सेना-मंत्री कोई नहीं दिखाई

पळा। विचारमें आया, कदाचित् छापेकी भूलसे नाम छूट गया हो। भला ऐसा महत्त्वपूर्ण पद रिक्त कैसे रह सकता है? पीछे मैंने देश-देशकी राष्ट्र-सभाओंमें देखा, सभी जगह सेना-मंत्रीका अभाव था। मैंने अन्तकी शब्दसूची उलटकर देखी, जहाँ सेना, सेनापति, सेना-मंत्री शब्द आये थे। उन पृष्ठोंके पढ़नेसे ज्ञात हुआ, २०२४ ई० हीमें प्राचीन संसारका यह महत्त्वपूर्ण पद उठा दिया गया। अब न तो सेना कहीं है, न सेनापति ही।

मैंने अभी इतना ही देख पाया था कि इतनेमें सभी लोग कामपरसे चले आये। आते ही सुमेधने मुझे चलनेके लिए कहा। मैं उठ खळा हुआ। मकानसे बाहर जानेपर, केवल किवाळ लगाकर जब सबको ही चलते देखा, तो मैंने पूछा—

"क्या यहाँ कोई नहीं रहेगा?"

"काम क्या है?"

"चीजोंकी रखवालीके लिए; और नहीं तो मकानमें क्यों नहीं ताला लगाकर चलते?"

"तालेको बिजलीके कारखानोंमें अनजान आदमीद्वारा भूल-चूकसे पुर्जा छू जानेके डरसे लगाते हैं। यहाँ किताबोंके छूनेसे कौन मर जायगा? कोई जीव-जन्तु भीतर जाकर कोई चीज खराब न कर दे, इसलिए दर्वाजे तो लगा ही दिये हैं।"

जानवरका नाम आते ही स्मरण आ गया, कि यहाँ तो पहले बहुत बन्दर थे; पूछा—

"अच्छा, यह तो मालूम हुआ कि अब चोरोंकी सम्भावना नहीं है।

रखकर सुखानेसे तो फलोंकी हानि होगी न ? इसलिए स्टेशनपर जाते ही, उन्हें चारों ओर बर्फ लगी हुई गाळीमें रखकर मांगवाले स्थानोंपर भेज दिया भी गया होगा ?"

"तो आपके गाँवमें केवल फल ही पैदा होते हैं ?"

"हाँ, केवल फल; उसमें भी सेवके बगीचे ही ज्यादा हैं। यही कारण है, कि हमारे ग्रामका नाम ही सेव-ग्राम पळ गया है। हमारे यहांसे १५ मीलपर नारंगी-ग्राम है, जहाँ नारंगीके ही बगीचे हैं। आपने पीछे बागमतीके उस पार केलोंका वन देखा होगा।"

"हाँ, देखा था।"

"वह कदली-ग्रामकी हदमें है। वहाँ प्राय: केले-ही-केले उत्पन्न होते हैं, हमारे ग्राममें थोळा नारंगीका भी बागीचा है। आपने जलपानमें जो केला खाया था, वह वहींका था।"

"मैंने सभी फलोंमें एक विशेष प्रकारका स्वाद और मिठास पाई। आकृति भी उनकी बळी देखी, क्या इसमें भी कोई बात है ?"

"हाँ, अब वनस्पति-विज्ञान आपके समयसे बहुत उन्नत हो गया है। फलोंमें विचित्र रूप, रस, गन्ध, आकृति पैदा करना मनुष्यके हाथमें है।"

हमारा वार्तालाप जारी था, मोटरें सर्राटेके साथ आगे भागती जा रही थीं। दोनों ओर सळकके किनारे सेवोंके बगीचे थे। हमारी सळक यद्यपि कहीं-कहीं दस-बीस हाथ ऊँचे-नीचे चली जाती थी, किन्तु वह चढ़ाई-उतराई ऐसी थोळी-थोळी थी, कि मालूम नहीं पळती थी। दाहिनी ओर बागमती थी और बाँई ओर पर्वत। बागमती कहीं-कहीं ४०० गज

नीचे है, कहीं इससे कम; किन्तु वगीचा किनारे तक लगता चला गया है। भूमिको एक रस कर दिया गया है। चट्टानें, जो भूमिको ऊभळ-खाभळ बनाती रहीं, या तो ढाँक दी गई हैं या तोळकर गंगामें फेंक दी गई हैं। मुझे मनुष्यकी इस शक्तिको देख आश्चर्य और आनन्द, दोनों होता था।

विचार करते-करते मेरे दिलमें आया, सेव-नारंगीकी फसल सदा तो नहीं होती। दूसरे दिनोंमें ये लोग क्या काम करते होंगे? उत्तर पानेसे पहले ही आसपासके वागोंमें छोटे-छोटे फल लगे दिखाई पळे। मैंने पूछा—यह क्या किसी दूसरी जातिके सेव हैं, जो इतने छोटे हैं?

"जातिमें भेद तो अवश्य है, किन्तु कदमें नहीं। ये तो वढ़कर उनसे भी वळे और लाल होते हैं, इनकी फसल अभी दो मास में तैयार होगी। हमारे यहाँ तो फसल वरावर ही लगती और टूटती रहती है।"

अभी यह वात हो ही रही थी कि मोटरें रेलकी सळक पारकर गईं। मैंने पूछा—यह रेल कहाँ जाती है?

"यह चन्द्रागढ़ी होती हुई काठमांडो और वहाँसे और आगे वहुत जगह तक फैली हुई है।"

मैंने आश्चर्यसे पूछा, क्या रेल इन पहाळोंपर चली गई। मैंने तो उस समय चन्द्रागढ़ीपर वोझे ढोनेके लिए, 'रोप-लाइन'का प्रवन्ध होते देखा था। उस समय उसके लिए फर्पिंगके विजली-घरसे विजलीके खम्भे गळ गये थे।

"अव तो फर्पिंगमें वैसा कोई विजलीका कारखाना नहीं है। मैंने भी पढ़ा है, पहले नेपालमें चन्द्र शमशेर नामका एक राजा था, उसने अपने

देशको लाभ पहुँचानेके लिए ही वहाँ एक बिजलीका कारखाना बनवाया था, किन्तु, आज डेढ़ सौ वर्षोंसे भी ऊपर हुए, वह बन्द कर दिया गया।"

"क्या मालूम है, क्यों बन्द कर दिया गया?"

"वहाँ आसपासके पहाळी झरनोंके पानीको एक तालाबमें जमा कर उससे बिजली तैयार की जाती थी, यद्यपि इससे कुछ बिजली तय्यार होती थी, जो शायद उस समयके खर्चके लिए पर्याप्त भी समझी जाती हो, किन्तु झरनोंके पानीका इस प्रकार विनियोग करनेसे, फर्पिंगके आसपासके पर्वत सूखते चले गये। चन्द्रने अच्छे ही विचारसे इन दोनों कामोंको क्यों न किया हो—"

"दूसरा काम कौन-सा?"

"दूसरा काम पहाळों और आसपासके जंगलोंको काटकर खेत बनवा डालना।"

"उससे हानि क्या थी?"

"उससे भी पहाळ धीरे-धीरे सूख चले—वृष्टि कम होने लगी। आखिर पचास वर्षके भीतर-ही-भीतर पानीके अभावसे उन खेतोंको छोळकर लोगोंको भाग जाना पळा।"

"तो क्या उस कारखानेको बन्द कर कुछ फायदा पहुँचाया गया?"

"हाँ, बहुत। अगर आप अब जाकर देखें, तो फर्पिंगके आसपासके पर्वत रम्य उद्यानोंसे हरे-भरे मिलेंगे। चारों तरफ सेव, नास्पाती, अंगूर और अनारके बाग लहलहाते पायेंगे। ये सब फल वहाँ होते भी हैं बहुत बळे और मीठे। इस तरह बगीचोंका जंगल लग जानेसे पहलेसे अब कई गुना

ज्यादा लाभ हैं। पहाळ फिर तर हो गये हैं; झरने भी वहुत हैं।"

"तव तो, सभी जगह भारी क्रान्ति हो गई! अच्छा, अव शायद आपका गाँव भी करीव है। वही मकान तो दिखाई दे रहे हैं?"

"हाँ, वही; किन्तु अभी तीन मील है—यही दस मिनटका रास्ता।"

"क्या आपने नेपालकी सैर की है?"

"हाँ, वहुत। मेरा वार्षिक विश्राम वहुधा वहाँ और तिव्वतकी सैर हीमें कटा है। मुझे तीस वर्ष यहाँ रहते हो गये। प्रति वर्ष दो मासका विश्राम मिलता है। मैंने १०-१२ छुट्टियाँ वहाँकी ही यात्रामें विताई हैं। भौगोलिक और आर्थिक दृष्टिसे भी मैंने वहाँके विषयमें वहुत विचार किया है।"

इस पुरुषकी इस प्रकारकी वातें सुनकर मुझे और भी आश्चर्य होता था। वीसवीं शताव्दीमें ऐसा पुरुष किसी अच्छे कालेजका प्रोफेसर होता। किन्तु आज यह सामान्य जनोंमें है। क्या विद्याकी कदर कम हो गई, या विद्वत्ताका मान ऊँचा हो गया? मैंने पूछा—आपके इस ज्ञानसे औरोंको भी कुछ लाभ पहुँचता है?

"क्यों नहीं? हमें ड्यूटी तो ३ घंटे ही वजानी होती है। वाकी समयमें करते ही क्या हैं? मैंने कई वार अपने परिशीलित विषयपर यहाँ व्याख्यान दिया है, छुट्टियोंके समय दूसरे प्रान्तों या देशोंमें जानेपर भी वहाँ व्याख्यान-द्वारा लोगोंको लाभ पहुँचाता हूँ। मासिक पत्रोंमें भी चर्चा करता हूँ।"

"अच्छा, यह तो हुआ; भला यह तो वताओ, नेपाल क्या-क्या चीजें पैदा करता है?"

"खनिज पदार्थोंमें यहाँ ताँवा, लोहा और सीसा वहुत ही अधिक

होता है। अपने यहाँ काम चलानेके लिए कोयला भी निकल आता था, किन्तु अब बिजलीका उपयोग अधिक होनेसे कोयलेकी उतनी बळी आवश्यकता नहीं रही। विहार और युक्त-प्रान्त तक यहांसे बिजली जाती है और यह बिजली तैयार होती है कई नदियोंके जल-प्रपातसे। यह रेल भी उसी बिजलीसे चलाई जाती है। फिर उसीसे हमारी मोटरें चल रही हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल मेवोंकी खान है। करोळों भेळ और बहुत-से कम्बल-के कारखाने भी यहाँ हैं। आधेसे अधिक भारतवर्षको गर्म कपळे नेपाल ही देता है।"

"तो ज्ञात होता है, यहाँ चावल-गेहूँ नहीं होता।"

"नहीं; ये सब चीजें और प्रान्तोंसे आती हैं। आज-कल जो वस्तु जहाँ अच्छी हो सकती है, वही वहाँ पैदा की जाती है। प्रायः एक गाँव एक ही चीज पैदा करता भी है। वहाँ जरूरतकी दूसरी-दूसरी चीजें और जगहोंसे पहुँचती हैं।"

अब हम गाँवके पहले घरके पास पहुँच रहे थे। मैंने देखा, वही पुरुष, जिसके प्रतिबिम्बको मैंने टेलीफोनमें देखा था, मेरे स्वागतके लिए कुछ और आदमियोंके साथ खळा है। स्वागत हुआ।

मैंने देखा कि सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और स्वच्छ हैं। सळकके किनारे सुन्दर मकानोंकी कतारें हैं। सभी मकान एक-से तथा बिना कोठेके हैं। मुझे यह एक बिलकुल नई दुनियाँ मालूम होने लगी। अभी मैं इन बातोंपर कुछ विचार ही रहा था, कि देवमित्रने मुझसे कहा—इस रास्ते।

मैं पीछे हो लिया। मेरे साथ वे सभी स्त्री-पुरुष भी शामिल थे। अब

साढ़े पाँच बज चुके थे। जिस मकानकी ओर हम जा रहे थे, मैंने देखा, उसपर मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ है—'अतिथि-विश्राम'। ग्रामणी महाशयने पहुँचते ही वहाँपर उपस्थित एक भद्र पुरुषसे पूछा—साथी देव ! कौन-सा कमरा आजके मेहमानके विश्रामके लिए ठीक हुआ है? देवने कहा, यही पाँचवाँ कमरा तो। अभी कमरेके द्वारपर ही हम पहुँचे थे कि बगलवाले कमरेसे एक दूसरे सज्जन निकल आये, जिनकी अवस्था सत्तर और अस्सीके बीचकी होगी। उन्होंने भी स्वागत किया। अब हम लोग कमरेमें दाखिल हुए। ग्रामणी महाशयने कहा—

"इस समय हमलोग आपको अधिक कष्ट न देंगे। आप मार्गके थके-माँदे हैं। थोड़ी देर विश्राम करें। आठ बजे भोजन हो चुकनेपर आपके दर्शनके लिए उत्सुक सभी ग्रामवासी संस्थागारमें एकत्रित होंगे। मुझे तो आप जानते ही हैं। मैं आज-कल यहाँका ग्रामणी (ग्राम-सभाका सभापति) हूँ। ये दूसरे बीस भद्र पुरुष और महिलायें ग्राम-सभाके सभ्य हैं। यह दूसरे अतिथि विश्वामित्र, नालंदा विद्यालयमें इतिहासके अध्यापक हैं। कुछ ऐतिहासिक खोजके सम्बन्धमें तिब्बत गये थे, जहाँसे आज ही विमानसे यहाँ आये हैं। पीछे बात करनेपर आपको इनसे और बातोंकी जानकारी होगी। यह साथी देव हैं।"

थोड़ी ही देरमें और लोग मुझसे विदा माँगकर चले गये। देवने झट बिजलीकी रोशनी की, क्योंकि अब सूर्यास्त हो गया था। पहाड़ी सर्दी भीनी-भीनी लग रही थी। यद्यपि मार्गमें सुमेधने मुझे एक ऊनी लबादा दे दिया था, पर वह पर्याप्त नहीं था। देवने तापकको खोल दिया, और

थोळी देरमें कमरा गर्म हो गया। मैं एक कुर्सीपर बैठा और विश्वामित्रसे भी कहा कि यदि कोई अन्य आवश्यक कार्य न हो तो बैठ जाइये। वह दूसरी कुर्सीपर बैठ गये।

बागमें जो ऐतिहासिक ग्रंथ देखा था, उसके रचयिताके नामसे यद्यपि मुझे निश्चित-सा हो गया था, कि यह वही विश्वामित्र हैं; तो भी मैंने पूछा—क्या आप 'सार्वभौम राष्ट्रके संगठनका इतिहास'के लेखक अध्यापक विश्वामित्र हैं?

उन्होंने नम्रता-पूर्वक कहा—"हाँ, वही।"

"तो मुझे आपकी मुलाकातसे बहुत प्रसन्नता हुई।"

"उससे कहीं अधिक मेरा भाग्योदय हुआ। हमारा नालन्दा-परिवार आपको सदा याद रखता है। आपने जो बीज वहाँ बोया था, उसे देखकर आज आप प्रसन्न होंगे। आपके और ग्रामणी महाशयके वार्तालापके बाद ही आपके शुभागमनकी मुझे खबर लग गई थी। वहाँ सारा विद्यालय-परिवार बळा उत्सुक है। हमारे आचार्य वशिष्ठने अभी मुझसे कहा है कि, सबसे प्रथम आपके दर्शनोंका अधिकारी नालन्दा-परिवार है।"

"आपने क्या टेलीफोन-द्वारा यह वृत्तान्त जाना है?"

"हाँ। अभी तो पुस्तकालयमें टेलीफोनपर बात ही कर रहा था। आपके इस जगह आनेका समाचार भी उन्हें मैंने दे दिया। उन्होंने कहा है, यदि कष्ट न हो, तो इसी समय वार्तालाप और दर्शन देनेके लिए कहें।"

"नहीं, कुछ नहीं। मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है। कौन पैदल आया हूँ! चलो, चलें। यह मेरे लिए कम आनन्दका विषय नहीं है।" यह कह, हम दोनों उठकर पुस्तकालयमें गये। यह सौ-डेढ़ सौ आदमियोंके बैठने लायक

एक खुला हाल है। दो आलमारियाँ कितावोंकी हैं। विजलीकी रोशनी जल रही है। वीचमें वळे-वळे मेज और वैठनेके लिए वहुत-सी कुसियाँ पळी हैं। विश्वामित्रने जाकर टेलीफोनमें घंटी दी। मैं वहाँ ही कुर्सीपर बैठ गया। वह कुछ क्षणके वाद मुझसे बोले—"हमारे, आचार्य आपकी प्रतीक्षामें खळे हैं।"

मैंने जाकर देखा, शीशेमें एक वृद्ध पुरुपका प्रतिविम्व है। प्रतिविम्वने होठ हिलाकर सिर झुकाया और टेलीफोनसे आवाज आई—'स्वागतम्'। मैंने भी शिर झुकाकर उत्तर दिया।

विश्वामित्रने कहा, यही हमारे आचार्य हैं। आप सत्तर वर्पसे विद्यालयकी सेवा कर रहे हैं, जिसमें वीस वर्पसे आप आचार्यके पदपर वर्तमान हैं।

मैंने कहा—वशिष्ठजी, आपके मिलनेसे मुझे वहुत ही प्रसन्नता हुई। वास्तवमें आप सव धन्य हैं, जो इस प्रकार अनवरत विद्या-दान द्वारा जगत्का उपकार कर रहे हैं।

"यह हमारा कर्तव्य है।...हाँ, नालंदा-परिवारकी ओरसे मेरी प्रार्थना है, कि अन्यत्र कहींका निमंत्रण स्वीकार करनेसे पूर्व, पहले अपने विद्यालयमें पधारें।"

"यह मेरी स्वयं ही इच्छा है, इसके विपयमें और कुछ कहना न होगा। मैं यहाँसे सीधे वहाँ ही आऊँगा।"

"अध्यापक विश्वामित्र आपकी सेवामें हैं ही, यह भी खुशीकी वात है। वह अव विद्यालयको लौट रहे हैं; उन्हींके साथ पधारें। आपका शरीर अत्यन्त कृश है। इसलिए हमारा यह आग्रह नहीं, कि आप तुरत आवें।"

"मैं अवश्य यहाँसे वहाँ ही आता हूँ। सभी बालक-बालिकाओं, और अध्यापक-अध्यापिका-परिवारसे मेरी मंगल-कामना कहें।"

"यहाँ शब्दप्रसारकसे सभी सुन रहे हैं। अच्छा, तो अब आप विश्राम करें।"

इस वार्तालापने एक अद्भुत आनन्द मेरे हृदयमें पैदा कर दिया। मैं विश्वामित्रका हाथ पकळे वहाँसे अपने कमरेमें आया। मैंने कहा—

"विश्वामित्र! मेरे समयके और अबके संसारमें बळा फर्क है। तुम तो इतिहासके अध्यापक ही हो—इन बातोंको जानते हो। किन्तु यह मुझे अधिक आश्चर्यमय इसलिए मालूम होता है, कि मैंने दो सौ वर्षोंके पूर्वका संसार इन्हीं आँखोंसे देखा था। मुझे वे बातें कलकी-सी दीख पळती हैं। उस समय समानताकी धीमी-सी आवाज उठी थी; किन्तु यह रूप-रेखा स्वप्नमें भी कहाँ मालूम होती थी? मैं आज ही तुम्हारे संसारमें आया हूँ। अभी तो मैंने इसका शतांश भी देख-समझ न पाया। किन्तु, इतनेहीमें आश्चर्य-समुद्रमें डूब रहा हूँ। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हो रही है कि तुम्हारे संसारने अनेक अंशोंमें आशातीत उन्नति की है।"

४

विद्यालयके विषयमें

"अच्छा, यह तो बताओ, नालन्दा विद्यालयकी इस समय क्या स्थिति है?"

"अब नालन्दा बहुत विशाल विद्यालय है। पुराने बळगाँवसे राजगृह तक विद्यालयके ही भवन और छात्रालय चले गये हैं। सारे भूमंडलमें दर्शन और इतिहासके लिए ऐसा दूसरा विद्यालय नहीं। वहाँ अध्ययनके लिए यूरोप, अमेरिका, जापान, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया सभी जगहोंसे विद्यार्थी आते हैं। प्राचीन वस्तुओंका संसारमें सबसे बळा संग्रहालय यहींपर है। प्राचीन लिपियों और भाषाओंके पढ़ने-पढ़ानेका यहाँ सर्वोत्तम प्रबन्ध है। 'सार्वभौम राष्ट्र परिषद्'की आज्ञासे, सिर्फ भारतकी इतिहास-विषयक सामग्री ही नहीं, बल्कि रोम, यवन, मिश्र, असुर कल्दान, मेक्सिको आदिके

विषयकी कितनी ही सामग्रियाँ यहाँ संगृहीत हुई हैं। नालन्दाको अभिमान है कि उसने अन्तर्राष्ट्रीय इतिहासके प्रस्तुत करनेमें बळी सहायता की है। दर्शनका अध्ययन नालन्दामें उत्तम रीतिसे होता है। नव्य, प्राचीन, पौरस्त्य, पाश्चात्य सभी दर्शनोंके अध्ययनका प्रबंध है। हमारे आचार्य दर्शनके महान् विद्वान हैं। संस्कृत, पाली, जन्द, प्राकृत, यवनानी, लतीनी (रोमक) इत्यादि बहुत भाषाओंके यहाँ अध्यापक हैं। भाषाओंके अध्ययनमें अब सचमुच बळी क्रान्ति हो गई है। प्रत्येक भाषाके अध्ययनके उपयुक्त वातावरण बना हुआ है। विशेष-विशेष भाषाओंके जिज्ञासुओंको यहाँ रख कर एक प्रकारसे दूसरी भाषासे उनका नाता ही तुळवा दिया जाता है। उनका सभी समालाप उसी भाषामें होता है। वस्तुओंका नाम आदि अध्यापकगण आकृति-प्रदर्शन पूर्वक उसी भाषामें बतलाते हैं। इस प्रकार तीन वर्षमें छात्रोंका उस भाषापर अधिकार हो जाता है। इसके अतिरिक्त ज्योतिषशास्त्रका अध्ययन भी भारतमें सबसे अच्छा यहाँ होता है। राज-गृहके वैभार-गिरिपर यहाँकी महान् वेध-शाला है। ज्योतिष-साहित्यकी वृद्धिमें भी हमारे विद्यालयने भाग लिया है। भारतके 'नालन्दा' और 'तक्षशिला'के विद्यालय भूमंडलके प्रमुख विद्यापीठोंमेंसे हैं। 'तक्षशिला'ने आयुर्वेद, वनस्पति, प्राणि आदि शास्त्रोंमें बळी कीर्ति अर्जित की है।"

"पठन-काल विद्यालयमें क्या है? नियम तथा परीक्षा-क्रम कैसा है?"

"१७ वर्षका अध्ययन तो सबहीके लिए अनिवार्य है। यह नियम भारतके ही नहीं, सारे भूमंडलके विद्यालयोंके लिए एक-सा है। तीसरे वर्ष बालक माता-पितासे ले लिया जाता है। उसके बाद ६ वर्ष तक शिशु-कक्षा,

से १४ तक बाल-कक्षा और १४ से २० तक युवक-कक्षामें शिक्षा पाता है। साधारणतया यहीं पढ़ाई समाप्त हो जाती है। इसके बाद लड़के अपनी प्रवृत्ति और योग्यताके अनुसार भिन्न-भिन्न व्यवसायोंमें लग जाते हैं। किन्तु, जिनकी प्रवृत्ति विद्या-व्यवसायमें देखी जाती है, उन्हें अपने विषयमें योग्यता बढ़ानेका और भी अवसर दिया जाता है। यह समय प्रायः ४ से ६ वर्ष तकका है। किन्तु इसमें अवधि नहीं है। इसके बाद भी अध्ययन करते उन्हें आगे बढ़नेका पूर्ण अवसर प्राप्त है।"

इस प्रकार अनेक विषयोंपर हमारा वार्तालाप चलता रहा। मैंने संक्षेपसे ही कुछ अंश यहाँ दिया है। अभी बात चल ही रही थी कि आठ बजनेका समय हो गया। इसी बीचमें अतिथिशालाकी श्री पद्मावतीने आकर अभिवादन कर लिया था, किन्तु हमारी गम्भीर बात छिड़ी देख वे और कुछ बोलना उचित न समझ, चली गई थीं। अब फिर उन्होंने आकर सूचित किया कि आठ बजनेवाले हैं। भोजनका गोला दगनेवाला है। चलनेके लिए तैयार हो जाना चाहिए।

५

बीसवीं सदी

इसपर मैंने विश्वामित्रसे पूछा—"यह गोला क्यों दगता है?"

"बात यह है, कि हर आदमीके पास घळी रखनेकी फजूल-खर्ची राष्ट्रने उचित नहीं समझी। इसीलिए समयकी सूचना इस प्रकार दी जाती है। दिन-रातमें जलपान और भोजनके लिए चार समय हैं—सवेरे सात बजे प्रातराश, ग्यारह बजे दोपहरको मध्याह्न भोजन, तीन-साढ़े तीन बजे जलपान और फिर रात्रिमें आठ बजे ब्यालू। इन चारों समयोंपर तथा प्रातः जागनेके समय तोपका गोला छोळा जाता है।"

"किन्तु, मैंने बागमें सुमेधजीके पास तो घळी देखी थी?"

"हाँ, बाहर कामपर जानेवालोंमें एक मुख्य पुरुषके पास घळी रहती

है, सवके पास नहीं। अच्छा, तो अब हमें चलना है। यह लीजिये, गोला भी—अररर-धम्।"

हमलोग जल्दी ही वहाँसे निकल पळे। देव, पद्मावती और हम दोनों चार आदमी थे। सळकपर चारों ओर चाँदनीकी भाँति विजलीकी रोशनी फैल रही थी। सळक प्रशस्त और स्वच्छ थी। उसके दोनों ओर एक समान पक्के मकानोंकी पंक्तियाँ थीं। हर एक मकानके सम्मुख सळक तक फूलोंके वृक्ष थे, जो अपनी शोभा और सुगन्धसे चलनेवालोंके चित्तको प्रफुल्लित कर रहे थे। प्रत्येक घरके सामने वरांडा था, जो सौ-सौ घरोंके लिए एक ही था। विश्वामित्रजीने वताया कि प्रत्येक पुरुषके रहनेके लिए तीन-तीन कमरे हैं, जिनमेंसे सामनेवाला वैठकका कमरा उतना ही बळा है, जितना कि वह कमरा, जिसमेंसे अभी हम आये हैं। इनमें दस कुर्सियाँ आसानीसे बिछाई जा सकती हैं। पीछेकी ओर चौळाईमें इससे ड्योढ़े, किन्तु लम्बाईमें आधे, दो कमरे हैं—एक सोनेके लिए, और दूसरा स्नानके लिए। यही तीनों कमरे मिलकर एक घर कहलाता है। ऐसेही सौ घरोंकी एक श्रेणी है। हर श्रेणीके लिए एक एक निर्वाचित प्रधान होते हैं, जो स्वयं भी उसी श्रेणीके एक घरमें रहते हैं। मुझे पीछे मालूम हुआ, कि सुमेध ऐसी ही एक श्रेणीके प्रधान हैं। प्रत्येक श्रेणी का एक विस्तृत हाल होता है। जिसमें कुछ पुस्तकें, वाद्य तथा और मनोरंजनकी वस्तुयें रहती हैं। यहाँ ही टेलीफोन भी लगा रहता है। इस सेव-ग्राममें ऐसी पचीस श्रेणियाँ हैं।

नर-नारी सळकपर आपसमें वार्तालाप करते चल रहे थे। सवकी वातों-का लक्ष्य मेरी ही ओर दिखाई पळता था। मैंने हजारों नर-नारियोंको

मार्गमें देखा, किन्तु उनमें एक भी वच्चा नहीं दिखलाई पळा। मैंने समझ लिया, तीन वर्षके वाद तो वच्चे ले ही लिये जाते हैं। सर्दीके कारण छोटे वच्चोंको शायद इस समय साथ न ले जाते हों। अव मैंने पासके वृहद् भवन पर मोटे अक्षरोंमें 'भोजनागार' देखा। अपूर्व विद्युच्छटा चारों ओर छिटक रही थी। मकानमें प्रविष्ट होनेके लिए वहुत-से द्वार थे। प्रविष्ट होनेसे पहले लोगोंने वरांडेमें गर्म जलके नलोंसे हाथ धो, लटकते रूमालोंसे हाथ पोंछे। फिर भीतर प्रविष्ट हुए। भोजन रखनेकी मेज-कुर्सियाँ वैसी ही थीं, जैसी कि वागमें देखी थीं। हाल वहुत ही लम्वा-चौळा था। उसमें पाँच सहस्र आदमी आरामसे वैठकर भोजन कर सकते थे। स्वच्छता और भीतरी सुन्दरता अपूर्व थी। रसोई-घर, ज्ञात होता है, उससे पृथक पीछेकी ओर था। मेरे वहाँ पहुँचनेके साथ ही ग्रामणी तथा अन्य पूर्व-परिचित भद्र पुरुप और महिलायें आ गई थीं। मुझे एक कुर्सीपर वैठाया गया। मेरी दाहिनी ओर देवमित्र और वाँई ओर विश्वामित्र थे। भोजन पहलेसे परोसकर तैयार रक्खा हुआ था। भोजनके पदार्थोंमें रोटी, मांस और दो तरकारियाँ थीं। एक कटोरीमें हलवा भी था। साथ ही एक तस्तरीमें थोळा फल और एक गिलास जलका रखा था। अभी आकर दो मिनट हमें वैठना पळा, तव घंटा टनन्-टनन् हुआ, जिसपर देवमित्रने कहा, अव भोजन आरम्भ होना चाहिए। यह इतनी प्रतीक्षा इसीलिए की जाती है कि भोजन करने वाले सभी आ जायँ। मुझे वह भोजन-मंडली वळी विचित्र मालूम होती थी। वीच-वीचमें पुरुपोंके साथ स्त्रियाँ भी वैठी निस्संकोच भोजन कर रही थीं। मैंने अपने दिलमें कहा, वीसवीं शताव्दीके भारतीय ऐसा स्वप्न

सकते थे। यद्यपि मैंने अभी पूछा नहीं था और देखनेमें शिक्षा, शुद्धतामें सभी स्त्री-पुरुष उच्च वर्णहीसे ज्ञात होते थे, तो भी में होता था, कि क्या ये सब ब्राह्मण-क्षत्रिय होंगे। कुछ तो मैंने पहले था—अर्जुनके माता-पिता लंका-निवासी थे। यद्यपि वेष-भूषा सबका था, किन्तु बहुत से स्त्री-पुरुष यूरोपवालोंकी भाँति गोरे मालूम । इन सब बातोंसे मेरे दिलमें निश्चित-सा हो गया था, कि 'एक-ई सर्वम्'।

भोजन करके सब लोगोंने उठ-उठकर अपने-अपने द्वारसे निकलकर लोंपर हाथ धोया। मुंह पोंछनेके बाद, अब सब लोग वहांसे चले। ग्रामणीने कहा ही था कि संस्थागारमें जमावड़ा होगा। अतः वहाँ ही स्थान किया गया। हाँ, एक बात यह भी देखी कि यद्यपि हाथ-मुंह धोया किन्तु जूतेको किसीने खोलकर पैर नहीं धोया और न दूसरे ोंको भी किसीने उतारा।

अब हम लोग वहांसे संस्थागारको चले; यह भव्य भवन योंकी ूरपर था।

चलनेका संकेत किया। मेरे पहुँचते ही मुझे देखकर सारी आँखें मेरी ओर हो गईं। 'संस्थागार'की अभ्यान्तरिक शोभा अत्यन्त मनोहारिणी थी। रंगमंचपर तरह-तरहके रंगीन चित्र विचित्र और प्रखर विद्युत्प्रदीपोंका प्रकाश था। भवनकी छत बहुत ऊँची थी। बळे-बळे झरोखे लगे हुए थे। विद्युल्लताके प्रकाशसे रातका दिन हो रहा था। यद्यपि सर्दी पळ रही थी, झरोखे और द्वार चारों ओर खुले थे, किन्तु अन्तर्हित तापकयंत्रोंकी गर्मीसे भीतर किसी प्रकारकी सर्दी मालूम नहीं होती थी। दीवारों और छतोंपर भी बहुत अच्छे रंग-बिरंगे बेल-बूटे बने हुए थे। दीवारोंपर महापुरुषोंके बळे-बळे चित्र लटक रहे थे, जिनमें विचारक कवि सभी प्रकारके पुरुष थे। कहीं बुद्ध थे, तो कहीं रूसो, कहीं मार्क्स तो कहीं एंजल्; सुक्रात, प्लेटो, लेनिन, न्यूटन, डेकार्ट आदि अनेक जगन्मान्य पुरुषोंके चित्र उस विस्तृत भवनमें शोभा दे रहे थे। बीच-बीचमें बहुत-से सुभाषित टँगे थे।

मैंने जन-समाजकी ओर देखा, वहाँ न कोई कृश था, न मलिन, स्त्री पुरुष सब गद्दीदार बेंचोंके ऊपर बैठे थे। उस विस्तृत भवनमें पाँच सहस्र आदमी बैठे होंगे, तो भी पीछेकी ओरकी बेंचोंपर और भी दो-एक सहस्र आदमी आसानीसे बैठ सकते थे। इस भवनका उपयोग राजनैतिक, साहित्यिक सभी कामोंके लिए होता है। ग्राम-सभाकी बैठकें यहाँ ही होती हैं। मनोरंजनार्थ, बाहरी या अपने यहाँके प्रवीण लोग संगीत और नाट्याभिनयसे यहीं सबको प्रसन्न करते हैं। इतिहास, विज्ञान आदिपर बाहरी या ग्रामके व्याख्याताओंके व्याख्यान भी यहीं होते हैं। अनेक राष्ट्रीय तथा सामाजिक महोत्सव यहाँपर मनाये जाते हैं।

लोगोंके शान्त बैठते ही, देवमित्रने उठकर आजकी सभाका सभापति होनेके लिए श्री इस्माइलका नाम प्रस्तावित किया। प्रस्ताव करते समय उन्होंने कहा—यद्यपि हम सबोंके लिए साथी इस्माइल हृदयसे परिचित हैं, किन्तु आजके अपने श्रद्धेय अतिथिकी जानकारीके लिए इतना कह देना आवश्यक मालूम होता है, कि साथी इस्माइल अनेक बार हमारे ग्रामके ग्रामणी, तथा नेपाल प्रान्तके सभापति रह चुके हैं। यद्यपि आप अभी साठ वर्षके ही हैं, किन्तु गुणोंसे हम सब उन्हें वृद्ध समझते हैं। एक बात और है, जो आजके हमारे अतिथिके सम्बन्धमें उनको समीपतर बनाती है। यही नहीं कि वह नालन्दा विद्यालयके पुत्र हैं, बल्कि हमारे अतिथिको महापुरुष शफीका नाम स्मरण होगा; आप उसी वैशाली-वासी महापुरुषके पौत्र हैं। आपकी गणना संसारके बळे-बळे राजनीति-विशारदोंमें है। हमारे प्रान्त, विशेषकर हमारे सेव-ग्रामको इनपर अभिमान है, जहाँपर कि शिक्षा-समाप्तिके बादसे ही आप रहते हैं।

लोगोंने करतल-ध्वनि-पूर्वक प्रस्तावको स्वीकृत किया और श्री इस्माइल उठे। वास्तवमें देखने मात्रसे इनके चेहरेपर महापुरुषका तेज झलकता था। यथार्थमें उनको ६० वर्षका युवक कहना चाहिये। इनको ही क्या, ६०-७० वर्षका अबका आदमी बीसवीं शताब्दीके ३५-४० वर्षके हृष्ट-पुष्ट आदमी-सा मालूम होता है। जैसे और बातोंमें आजके संसारने उन्नति की है वैसे ही इस बात में भी। श्री इस्माइलने कहा—

"साथियो ! अनेक ज्ञान-वयोवृद्धोंके सम्मुख मुझे इस सेवाके लिए स्वीकार करनेका कारण आपकी निष्कारण दयाके सिवा और कुछ नहीं

खेत ही लोगोंके पाखाना जानेकी जगहें थीं। कुत्ते जगह-जगह फिरते रहते थे। किसी प्रकार मुश्किल से, जिस रास्ते से गाळी जा सके, वही उस समयकी सळक थी। आज-कल वे बैल-गाळियाँ और एक्के कहाँ हैं? प्राचीन वस्तुओंके संग्रहालयोंमें उन्हें आप लोगोंने देखा होगा। वही उस समयकी सवारी थी। धनी लोग अच्छे-अच्छे घोळोंकी गाळियाँ रखते थे। हाथी भी सवारीके लिए रखे जाते थे। अब तो आपके यहाँ, मोटर ही सवारीके लिए, मोटर ही लादनेके लिए, गाँवके सभी काम मोटर हीसे होते हैं। उस समय यह सभी काम आदमी या बैलगाळीसे होते थे। मैंने भी कई बार रात-रात भर बैलगाळीपर चढ़कर ८-१० कोसकी यात्रा पूरी की थी।

"हाँ, मैं उस ग्रामका वर्णन कर रहा था। बीचमें गाँवकी उसी पतली सळककी दोनों बगल दूकानें होती थीं, जिनमें हलवाई बतासे और लड्डू बेचते थे; बजाज कपळे; पंसारी रंग मसाले; कोई साग-तरकारी, कोई सूई-धागा, कोई नून-तेल। हफ्तेमें एक या दो दिन बळे हाट लगते थे, जबकि आस-पासके गाँवोंसे आवश्यक चीजोंको खरीदनेके लिए ज्यादा आदमी आया करते थे। कोई पैसोंसे चीजें खरीदता था। कोई अनाजसे बदलता था। दूकानदार इस खरीद-बेंचसे कुछ प्राप्त कर अपना निर्वाह करते थे। लोगोंकी अवस्थाकी क्या पूछते हो? आप लोगोंको तो उस समय का बळे-से-बळा धनिक भी देखता, तो देवता कहता। पाँच-छः वर्षके लळके चार अंगुल कपळेकी लँगोटी लगाये फिरा करते थे। कुछ धनिकोंको छोळ-कर, साधारणतया सभी एक अँगोछा और धोतीहीसे काम चलाते थे।

सो भी मैले-कुचैले, और बहुतोंके तो फटे चीथळे। स्त्रियां भी एक-एक मैली साळियोंसे गुजारा करती थीं, जिन्हें चीथळे-चीथळे हो जानेपर भी पेवंद लगाकर पहनती ही जाती थीं। मैंने बुन्देलखण्डमें ऐसी अनेक स्त्रियाँ देखी थीं, जिनका लहँगा एकदम जर्जर हो गया था और घिरावेकी चुनावटके कारण ही आर-पार दिखाई नहीं पळता था; अन्यथा शायद ही कहीं एक अंगुल साबित कपळा हो। वे क्या करें, गरीबी ही ऐसी थी।

"फिर अत्याचार कैसा? स्त्रियोंका जूता पहनना उस समय बहुत-सी जातियोंमें एक तो पाप समझा जाता था; दूसरे, पहननेके लिए नसीब भी कहाँसे होता? जाळेके दिनोंमें फटे चीथळोंको सीकर, अगर किसीने एक गुदळी बना पाई, तो समझ जाओ, उसने बळा ऐश्वर्य पा लिया। पुवाल बिछाकर लळकेवाले सब उसी गुदळीके नीचे दबककर सो जाते थे। सोनेके लिए चारपाइयाँ सबको नसीब न थीं। कपळोंकी तंगीसे बहुतोंको जाळा भी पुवाल ओढ़कर काटना पळता था। लकळियाँ कहाँ नसीब थीं कि आग तापते? यदि घास-फूस इकट्ठा कर पाया, तो बळी प्रसन्नतासे उसके किनारे बैठकर परिवारने थोळी देर धुंआँ लिया।

"मुझे खूब याद है। एक समय मैं जाळेके दिनोंमें बहुत सवेरे ही रास्तेसे जा रहा था। उसी रास्तेपर फटी-पुरानी, मैली-कुचैली साळी पहने एक बुढ़िया सूपमें कुछ लिये आ रही थी। उसके पीछे-पीछे दो लळके चार-पांच वर्षके थे। उनमेंसे बळेके पास एक लँगोटी थी, छोटेके बदनपर एक सूत भी नहीं था। माघ-पूसका जाळा पळ रहा था। सर्दीके मारे दोनों बच्चे ठिठुरे जा रहे थे। उन्होंने अपनी मुट्ठियोंको खूब कळी बाँधकर कमर झुका ली थी।

ऐसे लळके एक-दो नहीं, लाखों उस समय भारतमें थे।

"सळा-गला, खराब अन्न भी उस समय करोळों आदमियोंको पेट भर न मिलता था। कितने ही लोग पेटके लिए गाँव-गाँव भीख माँगते फिरते थे। मैंने अपनी आँखोंसे अनेक स्थानोंपर ऐसे लळकों और आदमियोंको देखा था; जोकि, खानेवाले बचे टुकळेको जब फेंक देते थे, तो उसे कुत्तोंके मुँहसे छीनकर खा जाते थे। यह बात नहीं कि लोग परिश्रमसे घबराते थे। दस-बीस चाहे वैसे भी हों; किन्तु अधिकतर ऐसे थे, जो रातके चार बजेसे फिर रातके आठ-आठ दस-दस बजे तक भूखे प्यासे खेतों, दूकानों, कारखानोंपर काम करते थे, फिर भी उनके लिए पेट-भर अन्न और तनके लिए अत्यावश्यक मोटे-झोटे वस्त्र तक मुयस्सर न होते थे। बीमार पळ जानेपर उनकी और आफत थी। एक तरफ बीमारीकी मार, दूसरी ओर औषध और वैद्यका अभाव, और तिसपर खानेका कहीं ठिकाना न था। १९१८ के दिसम्बरका समय था, जबकि सिर्फ इन्फ्लुयेंजाकी एक बीमारीमें, और सो भी ४-५ सप्ताहके अन्दर, ६० लाख आदमी भारतवर्षमें मर गये। मरनेवाले अधिकतर गरीब थे। जिनके पास न सर्दीसे बचनेके लिए कपळा था, न पथ्यके लिए अन्न; न दवाके लिए दाम था, न रहनेके लिए स्वच्छ मकान। वह पशु-जीवन नहीं, नरकका जीवन था। आदमी कुत्ते-बिल्लीकी मौत मरते थे। मुझे आज-कलकी भाषा-परिभाषाका बोध नहीं, अतः उसी पुरानी भाषाहीमें बोल रहा हूँ। सम्भव है, आप लोगोंको कहीं-कहीं समझनेमें कठिनाई हो।

"महिलाओ और सज्जनो! जिस समय देशके अधिकांश मनुष्य

इस प्रकारका जीवन व्यतीत कर रहे थे उस समय बहुत थोळे आदमी थे, जो इनसे कुछ अच्छी दशामें थे; जिन्हें उस समयकी परिभाषामें खाता-पीता कहते थे। हाँ, अँगुलियोंपर गिनने लायक ऐसे आदमियोंका भी समूह था, जिन्हें सब प्रकारके भोग सुलभ थे। ये लोग धनिक थे और नवाब, राजा, बाबू, तालुकेदार, बळे-बळे जमींदार, सेठ-साहूकार, महाजन, कार-खानेदार, इत्यादि नामोंसे पुकारे जाते थे। यद्यपि एकाध उनमेंसे कोई निकल आते थे, जिन्हें उपरोक्त दुखियोंका कष्ट प्रभावित करता था। परन्तु ऐसोंकी संख्या नहींके बराबर थी। धनी लोग बळे-बळे महलोंमें रहते थे, जो दो-महले चौ-महले पँच-महले होते थे। उन्हें केवल अपने शरीरकी सेवाके लिए बहुत-से स्त्री-पुरुष परिचारकोंकी आवश्यकता थी। कितने ही राजाओं के पास तो दो-दो तीन-तीन सौ लौंळियाँ थीं। दो-दो, चार-चार सौ स्त्रियोंसे उनका रनिवास भरा रहता था। इसपर भी ये लोग धर्म-धुरन्धर कहे जाते थे। किसीकी इज्जत बिगाळ देना, किसीका स्वत्व अपहरण कर लेना, इनके इशारोंका काम था। जब ये चलते थे, तो इनके आगे-पीछे सैकळों आदमी इनकी शरीर-रक्षाके लिए चलते थे। कितने तो पालकियोंपर चलते थे, जिन्हें आदमी ही ढोते थे! गाली तो सदैव इनके मुखारविन्दोंकी शोभा थी। जरा-जरा बातमें अपने आदमियोंका वह उसीसे सत्कार किया करते थे। आप सो रहे हैं—दूसरे उनके पैर दबा रहे हैं, पंखे झल रहे हैं। ये लोग अपने हाथसे कोई भी काम करना अप्रतिष्ठा-जनक समझते थे। एक आदमीके लिए कितनी ही मोटरें, घोळे-गाळियाँ, टमटम, सवारीके घोळे, हाथी रहते थे। उनमेंसे बहुत तो दिन-रात शराब, भंग, अफीम

आदि नशोंमेंसे किसी-न-किसीमें मस्त रहते थे। स्वयं परिश्रम कुछ भी न करते हुए, दूसरेकी मिहनतकी कमाईमें आग लगाना ये लोग खूब जानते थे। दूसरेके जखमपर 'सी' करनेवाले तो कम, पर नमक लगानेवाले अधिक थे। सिर्फ अपने एक शरीरके खाने कपळेपर ये लोग जितना खर्च करते थे, उतनेसे हजार आदमी सानन्द जीवन व्यतीत कर सकते थे। इनको अकेले रहनेके लिए, सैकळों आदमियोंके रहने लायक मकान होते थे। सबसे असह्य बात तो यह थी कि दुराचार, और अत्याचार की साकार मूर्ति होनेपर भी, ये लोग धर्मके स्वरूप बनकर संसारमें ध्रुव-पद ग्रहण करना चाहते थे; जिसमें कुछने यदि सफलता पाई हो, तो भी सन्देह नहीं। वह अपने सामने मनुष्यताका मूल्य नहीं समझते थे। इनका जादू न्यायाधीश, धर्माध्यक्ष पंडित-मौलवी-पादरी, सभीपर था। सभी इनकी 'हाँ-में-हाँ' मिलाते तथा इनके लाभकी बातके लिए अपने-अपने धर्म-ग्रन्थोंसे प्रमाण देनेको तत्पर थे। पंडित कहते थे, "धनी-गरीब, राजा-प्रजा अपने-अपने पूर्व जन्मकी कमाईसे होते हैं। यह सनातनसे चला आया है। यही भगवान्‌की इच्छा है। वेद-पुराण सब इसके साक्षी हैं।" मौलवी कहते थे, "खुदाने दुनियाकी भलाईहीके लिए अमीर-गरीब, बादशाह-रैयत बनाया, नहीं तो दुनियाका काम कैसे चलता? सारे रसूल, पैगम्बर इस बातके कायल और अपनी किस्मतपर सन्तुष्ट थे। बादशाह और मालिकपर खुदाका साया है।" ऐसे ही सभी एक ही सुरमें अलापते थे। असल बात तो यह थी कि लाखों परिश्रमी दीनोंका भाग छीनकर धनी लोग अकेले ही सब न खाकर कुछ टुकळे इन लोगोंको भी फेंक देते थे, जिनपर ये लोग हाँ-में-हाँ मिलाना अपना

कर्त्तव्य समझते थे। धन्यवाद है कि अब वह जादू उतर गया।

"अब तो आप सबको यह सब बातें सुन-सुनकर आश्चर्य होता होगा—क्या वे लाखों आदमी सचमुच भेंळ थे, जिन्हें एक धनी अपनी अँगुलीके इशारेपर नचाता था! यदि वे लोग जरा भी अपनी बुद्धिसे काम लेते तो क्यों गुलामीमें पळे रहते? सचमुच आज यह तर्क बहुत सरल है, किन्तु उस समय यह सोचना असम्भव मालूम होता था—शेख-चिल्लीका महल कहलाता था। आजकी अवस्थाके शतांशका भी विचार रखनेवाले उस समय पागल, खब्ती, अधर्मी, मनुष्यताके शत्रु समझे जाते थे। शिक्षा लाभ करके प्रत्येक आदमी उसी धनिक श्रेणीका बनना चाहता था, चाहे हजारमें कोई एक ही हो पाता हो। इस प्रकार शिक्षित और धनिक तो इस तत्वकी ओर ध्यान न देते थे और बेचारे गरीब इसे असम्भव समझते थे। वह अपने ही कमजोर ख्यालोंसे इस प्रकार जकळे हुए थे कि सचमुच उन्हें ऐसा होना असम्भव मालूम पळता था। आप कहेंगे—कैसी मूर्खता है। अपनी मिहनतकी कमाई दूसरेको खाने न देकर हमी खायेंगे, इतनी बात समझना कौन कठिन था? किन्तु, उनके लिए तो यही लोहेका चना था। उधर धनी लोगोंकी ओरसे कहा जाता था—ऐसा होनेसे धर्म नहीं रहेगा; जाति-मर्यादा चली जायगी; कलयुग आ जायगा। अभाग्यवश श्रमजीवी लोग भी अनेक ऊँच-नीच श्रेणियोंमें विभक्त थे। बिहार का ब्राह्मण श्रमजीवी कहता था—गरीब हैं तो क्या, खानेको नहीं मिलता तो क्या, किन्तु चमार, अहीर, राजपूत 'पा-लगी' तो करते हैं—'महाराज' तो बोलते हैं? भला चमार, अहीर हमारे बराबर हो जायेंगे?

सचमुच बळा अधर्म होगा ! भूखा मरना अच्छा; अपनी कमाई दूसरा खाय, वह भी अच्छा; किन्तु चमारको अपने ही ऐसा मनुष्य समझना ठीक नहीं। ऐसे ही, अपनेसे ऊँची जातिके पठान। सैयदके अभिमान को, चाहे गाँवका मोमिन जुलाहा दिलसे न अच्छा समझता हो, किन्तु, अपनेसे नीचे गिने जानेवाले भंगीको अपने बराबर होने देना उसे भी अभीष्ट न था।

"अब अन्त में, आपलोगोंके वर्तमान ध्येयके विषयमें कुछ कह कर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। सबसे प्रथम तो यह कि यह न समझ बैठो कि हम अब अन्तिम स्थानपर आ गये; अब हमारी सभी बातें पूर्ण हैं, अब हममें कोई त्रुटि नहीं। जिस समय यह विचार आ जायेगा, उसी समयसे आप पीछेकी ओर खिसकने लगेंगे—आपका ह्रास होने लगेगा। मनुष्य कहाँ तक उन्नति कर सकेगा, यह असीम है। जिस प्रकार कुछ दिनों-पूर्व ज्योतिषमें अति दूर एक सितारा आविष्कृत हुआ था, आगे उससे भी दूर दूसरा मिला है; उसी प्रकार, लाखों वर्षों तक दूर-से-दूर सितारोंका पता दूरबीनों और फोटो-चित्रोंसे लगता जायगा; किन्तु उससे नक्षत्र-मण्डलकी इयत्ता नहीं हो सकती। वैसे ही हमारी उन्नति, हमारे संशोधनका क्षेत्र अनन्त दूर तक विस्तृत है। दूसरी बात ज्ञानकी वृद्धि है। इसमें सन्देह नहीं; उस समय शिक्षामें जो उच्चता की अवधि थी, अब वहींसे उसका आरम्भ है। आपका समाज बहुत सुशिक्षित, और सभ्य है, किन्तु आप उन्नति करके आजके अन्तको कल का आरम्भ बना सकते हैं। आपके उत्तराधिकारियोंको भी ऐसा

अधिकार है। यह बळे आनन्दकी बात है कि आज विद्या विद्याके लिए पढ़ी जा सकती है। आज विद्याका वह पारितोषिक नहीं, मूल्य नहीं जो दो शताब्दियों-पूर्व रखा जाता था। आजकी सभी समृद्धिका मूल वही ज्ञान—वही विद्या—है, जिसकी कमीके कारण पहिले लोग मनुष्यता से गिर गये थे। इसकी वृद्धिमें उपेक्षा और इसके प्रचारमें असावधानी होना सभी खराबियोंकी जळ है। उन्नतिकी आकांक्षा और ज्ञानका अधिक-से-अधिक प्रसार यही दो मूल बातें हैं जिनसे आपने अब तक उन्नति की है और आगे भी इसके लिए असीम क्षेत्र पळा हुआ है। मैं आपके प्रेममय भावोंसे अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। और बस।"

मेरे व्याख्यानकी समाप्तिपर साथी इस्माइलने एक बार उठकर फिर मुझे धन्यवाद दे, सभा विसर्जित की। मैं विश्वामित्र, इस्माइल, देवमित्र, इस्माइलकी पत्नी प्रियम्वदा, तथा दूसरे सज्जनोंके साथ विश्राम-स्थानपर आया। रात्रिके दस बज चुके थे, मैंने उनकी सूचना और प्रार्थनाके उत्तरमें संक्षेप में कहा कि कल परसों और चौथे दिन में यहाँ ही रहकर आस-पासका तथा आपके ग्रामका अध्ययन करूँगा। इसके बाद अध्यापक विश्वामित्रके साथ यहाँसे सीधे नालन्दा जाऊँगा। वहाँसे भारतके प्रधान-प्रधान स्थानोंकी स्थितिका अध्ययन करके फिर कहीं बाहर कदम रखूँगा। आप सार्वभौम राष्ट्रपति श्रीदत्तको भी इसकी सूचना दे दें। देवमित्रने कहा आपके साथ, साथी इस्माइल और साथिन प्रियम्वदा भी बराबर रहेंगी, और यहाँकी बातोंके समझनेमें सहायता पहुँचायेंगी। मैंने इसके लिए प्रसन्नता प्रकट की। इसके बाद सब

लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। विदा होते समय इस्माइलजीने भी सलाम नहीं किया। मुझे पहलेहीसे इन लोगोंके मजहबसे दूर हो जानेकी झलक दिखलाई पळती थी, और पूछनेकी इच्छा होती थी। अब वह इच्छा और बलवती हो गई। विश्वामित्र पास ही बैठे थे। मैंने पूछा—

"विश्वामित्र ! यद्यपि मैंने लोगोंके नाम हिंदू मुसलमान जैसे सुने; किन्तु, उनकी पोशाक, बात-चीत, सलाम-दुआमें कोई फरक नहीं मिलता, क्या सभी मजहब मिल गये ?"

"मिल नहीं गये; प्रगति-विरोधी उन मजहबोंको हमने निकाल फेंका। नामोंमें भी बहुत परिवर्तन है, तो भी लोग जैसी इच्छा होती है वैसा नाम रख लेते हैं।

"और भाषा ? इस समय सारे भारतकी मातृभाषा 'भारती' है। जिसे आपके समयकी हिन्दी-उर्दूकी प्रतिनिधि कहना चाहिये। यही एक भाषा सर्वत्र बोली जाती है, लिपि भी नागरी है। अब भाषाकी कठिनाइयाँ नहीं हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें साहित्यिक-धार्मिक जिज्ञासासे और भी भाषायें पढ़ी जाती हैं; किन्तु है 'भारती' भाषा ही सर्व-सर्वा। चाहे किसी भी प्रान्तका भारतीय क्यों न हो, उसकी भाषा भारती होगी। अब पुराने पक्षपात तो रहे नहीं, इसलिये सबके भाषा, भाव, वेष, एक हो गये हैं।"

मैंने अब अधिक देर तक विलम्ब करना उचित नहीं समझा। समय की व्यवस्थाओंसे मुझे अनुमान हो गया था कि शयन आदिका भी

अवश्य कोई नियम होगा। विश्वामित्र भी अपने कमरेमें सोने चले गये। मैं भी अपने पिछले सोनेवाले कमरेमें पलंगपर जा लेटा। अभी मेरी आँखों में नींद नहीं थी। सामने दीवारसे लगा हुआ बिजलीका शुंडाकार प्रदीप अपना प्रकाश फैला रहा था। तापक मकान को गर्म किये हुए था और वहाँ सर्दीका नाम न था। आज षष्ठी तिथि मालूम होती थी। चन्द्रमा अभी वृक्षोंके शिखरसे मेरी कोठरीमें झाँकने लगा है। सामनेका पर्वत कुछ दूर है। चाँदनी चारो ओर छिटकी हुई है। रात्रि स्तब्ध है। मेरे बिस्तरेपर आनेके साथ ही रेलका घर-घराना सुनाई दिया था। इस सन्नाटेकी अवस्था में, एक-एक करके आजके प्रत्येक दृश्यकी फिर एक-एक बार आवृत्ति होने लगी। साथ ही मनने सब पर एक-एक स्वतन्त्र टिप्पणी भी करनी आरम्भ कर दी। स्त्री-जाति की स्वतन्त्रताका दृश्य सम्मुख आते ही कहा—तब तो एक-एक हाथके घूँघट और बुर्कोंकी बोरा-बंदी अब काहेको दिखाई देने लगी? अब दो बीस, चार बीस करके गिननेवाली स्त्रियाँ कहाँ मिलेंगी? अब, लळकोंके पूछनेपर, चन्द्रमाके धब्बे, तारा, आकाश-गंगाकी विचित्र कथा सुनानेवाली मातायें कहाँ मिलेंगी? धनियोंका ख्याल आते ही सोचा—तो अब राजाबहादुर, महाराजाबहादुर, रायबहादुर, खानबहादुर, नवाबबहादुर होनेके लिए कोई न मरता होगा। अब इन पदोंके दाता-प्रतिगृहीता सदाके लिए भूमण्डलसे विदा हो गये। अबके गाँवका दृश्य सम्मुख आते ही पुराने गाँवका चित्र दिलसे भागने लगा। शायद इसीलिए कि आसानीसे उसका ज्ञान न हो जाय। मैंने भी मनसे कह

दिया—तो इसकी पर्वाह क्या, तुम न दिखलाओगे, तो जादू-घरमें देखने से तो रोक न सकोगे ?

एक-एक करके सब टिप्पणियाँ समाप्त हुईं। इसी बीच ग्यारह बजे का घण्टा भी बज गया था। मैंने कहा, अब बारह भी थोळी देरमें बजेगा; कलके कर्त्तव्यका थोळा-सा विचार करके सो जाना अच्छा है। सोचा—सेव-ग्रामकी बागोंकी बातें तो देख सुन लीं। घरों और श्रेणियोंकी भी बात मालूम हो गई। संस्थागार-भोजनागार भी देख ही लिया। सुमेधने कहा था कि तीन वर्षके होते ही बालक शिक्षार्थ विद्यालयोंमें भेज दिये जाते हैं। तो यह देखना है कि तीन वर्ष तकके बालक कैसे रहते हैं, चिकित्सालय भी देखना है, गाँवकी सफाई आदिकी बातें जाननी हैं; यही मुख्य बातें हैं। इस्माइल और विश्वामित्र दोनों ही विस्तृत अनुभववाले पुरुष हैं। इनके साथ सबका देखना और भी अच्छा होगा। इस प्रकार विचार कर मैंने आज निद्रा-देवीकी गोद में विश्राम लिया।

६

ग्राम और ग्रामीण

पाँच बजनेसे पहले ही मेरी नींद खुल गई थी। मैं उठकर उस समय खिळकीसे आकाशकी ओर देख रहा था। चारों ओर तारे बिखरे हुए थे। चन्द्रमा मेरे सम्मुख नहीं था, किन्तु चाँदनी नज़र आती थी। चाँदनीमें खिळकीके बाहर लदे हुए फूल खूब दिखलाई पळते थे। गुलाबकी भीनी-भीनी सुगन्ध दबे-पाँव मेरे कमरेमें आ रही थी। अभी दस-पाँच मिनट ही बीते होंगे, कि गोलेकी आवाज हुई। पाँच बज गये। थोळी ही देरमें देव भी आ गये। उन्होंने पहले झाँककर देखा; जब मुझे बैठा पाया, तो भीतर आये। पूछा—क्या स्नान अभी होगा; यदि अभी, तो क्या यहीं घरके नलपर स्नान-पात्रमें, या स्नानागार के गर्म-कुंड में ?

मैंने कहा, मैं यहीं स्नान कर लूँगा। कल तो मुझे शौचकी आकांक्षा ही नहीं हुई थी। अब देवने बतलाया कि पीछेकी ओर वह पाखाना है। प्रत्येक घरका अलग-अलग पाखाना है जिसमें नल लगा हुआ है। पाखाना हो लेने पर नल घुमा देनेसे पानीकी बळी तेज धारा आती है, और मलको नलोंके द्वारा बहा ले जाती है। पीछे यह भी मालूम हुआ कि पाखानोंपर भंगी नहीं रखे हुए हैं। भंगी तो अब कोई जाति ही नहीं है। हाँ, नल बिगळ जानेपर कोई भी आदमी, जो नलोंके सुधारनेपर नियुक्त है, उसे ठीक कर देता है। सारे गाँवका मैला बळे-बळे नलों-द्वारा दो-तीन कोसकी दूरीपर जाता है। वहाँपर बळे-बळे गड्ढे, कलों-द्वारा खोदे हुए तैयार रहते हैं। मिट्टी नीचे भी खुदी, और बाकी आस-पास लगी रहती है। इधर मैला गिरता जाता है, और उधर मशीन मिट्टी उसपर फेंकती जाती है। मशीनें बिजलीके जोरसे चलती हैं और चलानेवाले भी दूर रहते हैं। यद्यपि मिट्टीसे ढँके रहने तथा खुली हवासे मैले का सम्पर्क न होनेसे, वहाँ दुर्गन्ध नहीं मालूम होती, तो भी संचालक लोग मशीनोंके बिगळ जानेपर वहाँ जाते हैं। एक गड्ढेके भर जानेपर पहलेसे दूसरा गड्ढा तैयार हो गया रहता है। इसी तरह एक भरा गड्ढा चार वर्ष तक बन्द छोळ दिया जाता है। पीछे खोद कर, उसमें और कुछ रासायनिक पदार्थ मिला कर, वह वृक्षोंमें खादकी भाँति उपयुक्त होता है।

मैं अपने बिस्तरेसे झट उठ खळा हुआ, और पहले शौच गया। पाखाना स्वच्छ था—वह पाखाने-सा मालूम ही नहीं होता था। अभी

में मकानकी पिछली ओर नहीं आया था। देखा, थोळी-थोळी दूरपर, छोटे-छोटे एक ही तरहके पाखाने बने हुए हैं। ये घरसे दस-दस हाथ हट कर हैं। बीचमें वैसे ही फूल, वेल-बूटे लगे हुए हैं जैसे कि सामनेकी ओर। 'अतिथि-विश्राम'की सम्पूर्ण श्रेणीके आगे-पीछे, एक पार्क-सी लगी यह फुलवारी बळी सुन्दर मालूम होती है। पीछे मैंने देखा, सभी श्रेणियोंका प्रबन्ध ऐसा ही है। अपने घरोंके आमने-सामने फुलवारियों को ठीक रखना, अपने-अपने घरको स्वच्छ-शुद्ध रखना घरवालोंका अपना काम है। मैं शौचसे आकर स्नानके कमरेमें गया। जाकर देखा, ठंढे और गर्म जलके दो नल लगे हुए हैं। सफेद दूधकी भाँति चीनी-मिट्टी का, पत्थर-सा मजबूत, दो हाथ लम्बा, डेढ़ हाथ चौळा, दो हाथ गहरा स्नान-पात्र क्या एक कुण्ड ही जमीन में मढ़ा हुआ है! नलकी बगलमें दीवारसे लगे एक स्थान पर साबुनकी टिकिया तथा उससे ऊपर खूंटियोंपर एक सफेद तौलिया और एक धुली हुई लुंगी रखी है। गर्म पानीका नल खुला हुआ है, और हौज लबालब भरा हुआ है, तो भी पानी ऊपरसे नहीं निकलता है। मैंने हाथ-पाँव धोया। विचार किया कि अब दतुवन करना चाहिये। दतुवन तो दीख नहीं पळी; हाँ, साबुनकी टिकियाके पासमें एक चाँदीकी डिब्बीपर एक दाँतका ब्रुश देखा। खोलनेपर डिब्बीके अन्दर सुगन्धित दाँतकी लेई मिली। मैंने विचारा, मालूम होता है, अब दतुवनका रेवाज ही नहीं रहा। पीछे विश्वामित्रने बताया, एक ही सेवग्राम के लिए पाँच हजार दतुवन चाहिये। अब फजूलके पेळ तो यहाँ हैं नहीं।

अच्छे पेळोंसे दतुवन तोळी जाने लगें, तो नित्य ही एक-दो पेळ सिर्फ एक गाँवके लिये खराब हो जायें। फिर भूमंडलकी जन-संख्या तो डेढ़ अरब है। इसीलिये ब्रुश और मंजनका प्रबन्ध किया गया है। अनार, बादाम आदि के छिलकोंको क्या हम लोग बेकार जाने देते हैं ? सबसे मंजन या कोई-न-कोई और कामकी वस्तु बनाई जाती है।

मैंने ब्रुश और लेईसे दाँत-मुंह साफ किया और कुण्डमें प्रविष्ट होकर, साबुनसे मल-मलकर खूब नहाया। इस प्रकार नहा-धो, कपळे बदलनेपर, देवने आकर एक कल घुमाई और स्नान-पात्रका सब जल निकल गया। उसी कमरेमें एक ओर खिळकीके पास एक ऊँचे स्थान पर स्वच्छ आसन बिछा हुआ था। मैंने वहाँ जाकर कुछ व्यायाम किया। इसके बाद बैठनेके कमरेमें आया। अब सूर्यकी रक्तिमा प्राची दिशामें फैली हुई थी। सूर्य-बिम्बकी एक पतली सुनहली रेखा ही अभी दिखाई पळती थी। जगह-जगह पक्षियोंका मधुर कलरव अब भी जारी था। हवाके झोंके सामनेके फूलोंको हिला रहे थे। सळक और सामनेके घरोंकी शोभा और स्वच्छता बिखरी हुई थी। मेरा भी चित्त अत्यन्त शान्त और प्रसन्न था।

इसी समय विश्वामित्र भी आ गये। उनके साथ पद्मावती भी थीं। मेरे कहनेपर वे दोनों भी पास ही रखी कुर्सियोंपर बैठ गये। यद्यपि चेहरा छोळ, सभी का सारा शरीर ढँका हुआ था ; तो भी गर्म मकान में सर्दी कहाँ थी ? सहस्रों वर्णनीय बातें हैं। सबका वर्णन कैसे हो सकता है ? पुरुषों और स्त्रियोंकी पोशाक, देखनेमें यही नहीं कि बळी सुन्दर

थी, वल्कि उसमें कोई वस्तु व्यर्थ, अनुपयोगी और हानिकारक भी न थी। मैंने कामके समय तो पुरुष-स्त्रियों, दोनोंको, ऊनी जाँघिया और नीचे लम्वा मोजा और सारा पैर ढँके हुए एक प्रकारका जूता देखा। मैंने आश्चर्य से देखा कि चमळेकी कोई चीज न थी। जूते भी थे एक तरहकी मोटी जीनके, (जो देखनेमें चमळेसी मालूम होती थी), जिनके तल्ले दृढ़ रवरके थे। कुर्तोंके नीचे एक गर्म कोट और सवके सरपर एक ही प्रकार की टोपियाँ थीं। किन्तु मालूम होता है, यह पोशाक कामके वक्त की थी, क्योंकि रातको भोजनके समय तथा संस्थागारमें वह पोशाक न थी। सवके सिरपर एक प्रकारकी गोल टोपी, पैरों तक लम्वे गर्म कोट और नीचे पतलून थी।

स्त्रियों के पहरावे जूता, मोजा, साळी, और कुर्ती हैं। अधिक सर्दी पळनेपर वह एक लम्वा गर्म कोट भी पहनती हैं, तथा सिरपर टोपी भी लगाती हैं। स्त्री या पुरुष कोई किसी प्रकारका भी जेवर नहीं पहनता। कलाई या पाकेट की घळियोंका भी चलन नहीं। निर्वल दृष्टिवाले तथा जिन्हें उसकी आवश्यकता है, चश्मा भी लगाते हैं। हर एक व्यक्तिके पासएक-एक फौंटेन-पेन और एक-एक रोजनामचा भी देखा। कलका वृत्तान्त लिखनेकी जव मेरी इच्छा हुई, तो मुझे भी मेरी इच्छानुसार एक वळा रोजनामचा, और एक फौंटेन-पेन मिली। इसकी निव प्राय: विल्कुल ही सोनेकी थी, शायद कळाईके लेहाजसे कुछ इरिडियम नोकपर लगाई गई हो। क्लिप भी सोनेकी। वात यह है, अव लोगों के लिये सोनेका और उपयोग ही क्या हो सकता है? पौंड और मुहर

तो चलते ही नहीं । न लोग आभूषण पहनते हैं, न गाळ कर रखनेहीका काम है । अतः इन्हीं सब चीजोंमें उसका उपयोग होता है ।

विश्वामित्र और पद्मावतीके आनेके थोळी ही देर बाद इस्माइल भी अपनी साथिन प्रियम्वदाके साथ आ पहुँचे और कहा, अब सात बजने ही वाला है, आज जलपानके बाद 'शिशु-उद्यान' देखना अच्छा होगा। प्रियम्वदा वहाँकी सहायक अधिष्ठात्री हैं। अभी यह, मुख्याधिष्ठात्री साथिन फातिमाको इस बातकी सूचना भी दे आई हैं। मैंने भी कहा, बहुत अच्छा, इस समय 'शिशु-उद्यान' देखा जाय, और दोपहर के बाद चिकित्सालय । इसी बीच गोलेकी आवाज आई और हमलोग भोजनागारकी ओर चले ।

सळकके दोनों ओर आस-पासके मकानोंकी शोभा और ही थी । सब मकानोंकी बनावटमें दृढ़ता, स्वच्छता और सुन्दरताका पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है । पूर्ववत् ही हमलोग हाथ-मुँह धो कुर्सियोंपर बैठे, जलपानके लिए एक-एक जलेबी, दो-दो अंडे और एक-एक गुलाब-जामन एक तश्तरीमें रखे थे । दूसरी तश्तरीमें ताजे तथा सूखे कुछ फलोंके कतरे और एक गिलास साफ जलके अतिरिक्त एक गिलास खाली भी रखा था, जिसमें पीछेसे गर्म दूध दिया गया । पूर्ववत् घंटीपर खाना आरम्भ हुआ । अब हम लोग—विश्वामित्र, इस्माइल, प्रियम्वदा और मैं—वहाँसे शिशु-उद्यानकी ओर चले । मालूम हुआ कि शिशु-उद्यान गाँवके अन्त में है ।

रास्तेमें पूछनेपर विश्वामित्रजीने कहा, पान हीका नहीं, अब

बहुत-सी चीजोंका रवाज उठ गया है। तम्बाकू खाना-पीना, बीड़ी-सिगरेट, शराब-गांजा, भंग-अफीम किसीका अब पता नहीं। बात यह है कि जो नशीली चीजें हैं, वे तो हैं ही वर्जनीय। उनका रोकना तो उनकी हानि-कारिताके कारण ही आवश्यक था; किन्तु, जो अनावश्यक हैं उन्हें भी राष्ट्रने बन्द कर दिया। कोई चीज एक आदमीके उपयोग के लिये, बिना विशेष स्वास्थ्यादि हेतुके तो दी नहीं जा सकती। सबके लिये नियम एक होना चाहिए। जितने कपळे साल भर में एक आदमी को मिलते हैं, सारे राष्ट्रमें उतने ही प्रत्येकको मिलते हैं। यदि पान का प्रबन्ध किया जाय, तो सारे राष्ट्रके लिये प्रबन्ध करना होगा। भारतमें २५ करोळ आदमी रहते हैं। आप विचार कर सकते हैं कि इतने आदमियोंके पान, कसैली, चूना, कत्था, तैयार करनेमें लाखों आदमियोंको लगा रहना पळेगा। इतनी फजूलखर्ची करना आज राष्ट्र कैसे गवारा कर सकता है? जो लाखों बीघे खेत पान, तम्बाकू आदि के पैदा करनेमें फँसे रहते, आज उनमें अन्य उपयोगी पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं। अनावश्यक व्ययके कारण ही चाय, काफी, भी संसार से उठ गई। अब उनके स्थानपर शुद्ध, गर्म, मीठा दूध सबको जाळेमें तीन वक्त और गर्मीमें दो वक्त मिलता है।

मैंने कहा, तुम्हारी आजकी राष्ट्रीय प्रगतिने तो सारे ही दुर्व्यसनोंके लिए एक ही पर्याप्त कुल्हाड़ी ढूँढ निकाली है। फिर मैंने पूछा—अब हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाईके पृथक् भोज आदिका झगळा तो रहा नहीं, किन्तु मांस खानेवालोंका कैसे निपटारा होता होगा।

इसपर विश्वामित्रने कहा—अब असली मांस मिलता ही नहीं। नकली मांस खानेमें किसीको संकोच नहीं।"

"और अंडा ?"

"वह तो परम सात्विक फलाहार है।"

"अब क्या यूरोप-अमेरिकामें सूअर आदि नहीं पाली जाती होंगी ?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं। बस्तीमें यहीं न देखिये, कहीं कोई जानवर है ? पहले जैसे मैंने बन्दरोंके बारेमें बताया था कि बंदरियोंको पकळ कर पिंजळोंमें बन्द कर दिया गया, जिसके कारण कुछ वर्षों में उनकी जाति ही उच्छिन्न हो गई। इसे जाति-उन्मूलन-प्रक्रिया कहते हैं। सूअर, कुत्ता, बिल्ली सबका जाति-उन्मूलन हो गया है। केवल प्राणि-विद्याके विद्यार्थियोंके उपयोगके लिए कहीं कहीं उन्हें पालकर रखा गया है।"

"चमळेका तुम लोगोंने तो व्यवहार छोळ दिया, इसलिए मांस छोड़नेसे उधर तकलीफ नहीं उठानी पळी होगी; किन्तु इतना जो दूधका खर्च है, उसके लिए गाएँ तो बहुत पालनी पळती होंगी ? खैर, मारनेसे नहीं, तो अपनी मौतसे तो उनमेंसे हाजारों मरती होंगी ? उनका चमळा भी क्या मशीनोंके 'बेल्ट' के लिए काममें नहीं लाया जाता ?"

"मशीनोंकी बेल्ट भी चमळेसे कहीं मजबूत कानविसकी बनती है। चमळेको अलग करना, उसको सिझाना इत्यादि बळा गन्दा काम था। जिससे वायु बहुत दूषित हो जाती थी। अतः वह काम ही एक दम

छोळ दिया गया। पशुके मरनेपर उसे खोद कर गाळ दिया जाता है। पीछे खाद हो जाने पर उसे व्यवहारमें लाया जाता है। ऐसे बेकार तो, जहाँ तक हो सकता है, कोई भी चीज जाने नहीं पाती। हड्डियोंका हम लोग पूरा उपयोग लेते हैं, गोबर आदि भी खादके लिए उपयुक्त होते हैं।"

हम लोग बातें करते जा रहे थे। रास्तेमें मिलनेवाले सभी नर-नारी मेरी ओर देखते चले जाते थे। ग्राम पहाळके नीचे और नदी के किनारे होनेसे लम्बाईमें अधिक है। चौळाईमें तो पांच सळकें ही हैं। सळकें अच्छी चौळी हैं, जिनके दोनों ओर घने वृक्ष लगे हुए हैं। प्रत्येक सळकके दोनों ओर गृह-श्रेणियां हैं। प्रत्येक श्रेणीका पिछला भाग अगली श्रेणीके पिछले भागसे मिला है, अर्थात् दोनोंके पाखाने एक ही में जुळे हैं। इस प्रकार चौळाई में छः श्रेणियां हैं। ग्रामकी लम्बाई पूर्व-पश्चिम है। एक श्रेणीकी समाप्ति पर उत्तर-दखिखन जानेवाली एक-एक सळक है। यदि कोई आदमी ग्रामणी-कार्यालयसे चले, तो एक चौराहेपर अतिथि-विश्रामकी श्रेणी मिलेगी। इसके बाद साधारण श्रेणियाँ हैं। तीन चौराहे पार कर चौथेपर 'संस्थागार' पळेगा, जो दो श्रेणियों के बराबर जगह घेरता है। ग्राम-पुस्तकालय इसीमें लगा हुआ एक बळा हाल है। यहांसे अवश्यकतानुसार पुस्तकें श्रेणी-पुस्तकालयोंमें भी आती-जाती रहती हैं। 'संस्थागार' और भोजनागारमें एक ही सळक का अन्तर है। गांवके नये और बळे-बळे सिलाई आदिके काम तो दर्जी-ग्रामों आदिसे बन कर आते हैं, किन्तु फिर भी कोई बीचमें मरम्मत

या जल्दीके कामके लिए ग्रामणी-कार्यालयके सामने सीने, रंगने, बिजली के शीशोंके रखने-बदलने आदिका काम होता है। उसकी उत्तर ओर उससे लगा ही हुआ धोबीखाना है, जहाँ मशीनोंके द्वारा कपळों की धुलाई, कलप आदि होती है। कपळों के सुखानेके लिए यहीं बळे-बळे गर्म हाल हैं। उससे एक सळक लाँघ कर भोजनकी वस्तुओंका गोदाम है। उसीसे लगी मोटरोंके ठहरनेकी जगह, तथा अन्य वस्तुओं का गोदाम है। अन्तमें सामान मरम्मतके कामके लिए फैक्टरी है, जहाँ लोहार-बढ़ईका भी कुछ काम होता है। इन सभी जगहोंपर मरम्मतका वही काम होता है, जिसकी जल्दी रहती है। नहीं तो, वे चीजें उन-उन ग्रामोंको भेज दी जाती हैं, जहाँ केवल उन्हींका काम होता है। इस प्रकार मालूम हो सकता है, ग्रामके सभी कार्यालय पश्चिम ओर, उत्तर-दक्खिनकी सळकपर पळते हैं। संस्थागार, भोजनागार बीच में, और शिशु-उद्यान तथा चिकित्सालय ग्रामसे बाहर पूर्व तरफ हैं। लम्बाईकी सळकें अधिक चौळी हैं तथा उनपर सायादार वृक्ष लगे हुए हैं।

इच्छा हुई, पहले शिशु-उद्यान देखूँ, पर भोजनका समय हो गया था, इसलिए भोजनागारकी ओर मुळा। जब भोजनागार बीस गज रह गया, तभी ग्यारहका गोला दगा। सब लोग पुनः पूर्ववत् हाथ मुँह धो भोजनके लिए बैठ गये। इस वक्तका भोजन वही था, जिसे पहिले समय में लोग कच्चा भोजन कहा करते थे। रोटी, दाल, भात, मांस, साग, कढ़ी, पकौळी, सभी चीजें परोसी गई थीं। मेरी दाहिनी ओर

विश्वामित्र और बाईं ओर इस्माइल बैठे हुए थे। हम लोग जरा पहिले गये थे, इसलिए दो एक मिनट अभी देर थी। मैंने कहा, इतनेमें पाकशाला ही देख आयें। भोजनागारके दक्षिण तरफ पाकशाला थी। जाकर देखा; सभी चीजोंके बनानेके लिए बळे-बळे बर्तन हैं, जिन्हें उतारने-चढ़ानेका काम मशीनों ही से लिया जाता है। आटा गूँधना, रोटी बनाना भी मशीनों ही द्वारा होता है। आगका काम बिजली देती है। इतनी बळी पाकशाला, जिसमें पांच हजार आदमियोंका भोजन बनता है, किन्तु कहीं कालिख नहीं, धूआं नहीं। हर-एक वस्तुके डालने और उतारनेका भी समय है। आंचका भी माप है। अतः किसी वस्तुमें गळबळी होनेकी गुंजाइश नहीं। यद्यपि सभी वस्तुयें स्वच्छ, शुद्ध ही आती हैं; तब भी भोजनके गुण-अवगुण-के विशेषज्ञ जब तक किसी वस्तुके लिए अनुमति नहीं दे देते, तब तक वह नहीं बन सकती। यह पहलेही बतला चुके हैं कि असली मांस अब नहीं मिलता; किन्तु कई ऐसे पदार्थ रसायनिक योगसे तैयार किये गये हैं, जिनमें स्वाद भिन्न-भिन्न मांसोंका आता है, और गुण भी वही। पाकशालामें पुरुष और स्त्री दोनों ही भांतिके पाचक हैं। परोसकर थालियों-कटोरियोंको लकळीके तख्तोंपर सजाया जाता है, जिनके पूरा हो जानेपर भोजनागारमें बिजलीहीसे घुमाया जाता है। उसपरसे दो-तीन आदमी उतार-उतारकर मेजोंपर रखते जाते हैं। भोजन समाप्त होनेपर फिर उसी भांति उन्हीं तख्तोंपर थालियां और दूसरे बर्तन रखकर, धोनेके कमरेमें पहुँचाये जाते हैं, जहां गर्म जल और शोधक पदार्थ-द्वारा मशीनहीसे उनको मांजा

जाता है। बचा हुआ जूठा भोजन मोटरपर लादकर बाहर एक जगह गाळ दिया जाता है, जिसकी खाद बनती है। किन्तु बहुधा लोग उतना ही लेते हैं, जिसमें अधिक जूठा न छूटने पाये।

घंटी बजनेसे पूर्वही, हमलोग अपने आसनपर बैठ गये थे। पीछे प्रेम-पूर्वक खूब भोजन हुआ। मुँह-हाथ धोकर जब हमलोग चिकित्सालयकी ओर चले, तो हमारे साथ देवमित्र भी थे। अब हम लोग चिकित्सालयमें पहुँचे। साथिन मनोरमा तथा उनके अन्य सहायकोंने द्वारहीपर हमारा स्वागत किया। एक सहायक चिकित्सकको छोळकर चिकित्सालयके सभी कार्य-कर्त्ता महिलायें ही थीं। सहायक चिकित्सक कोई दूसरे नहीं, मनोरमाके पति श्री रहीमबख्स थे। दोनों ही दम्पतिने तक्षशिलामें चिकित्साका पूरा अध्ययन किया था। जन्म आप लोगोंका काश्मीरका है। मैंने समझा था, पाँच हजार की जब आबादी है, तो रोगी भी उसीके अनुसार होंगे, किन्तु यहाँ बिल्कुल ५० रोगी दिखाई पळे। मालूम हुआ कि अधिक-से-अधिक एक बार सौ तक बीमारोंकी संख्या पहुँची थी। कोढ़, बवासीर, उपदंश, राजयक्ष्मा, मृगी, दमा आदि रोगोंका जब संसारसे ही नाम उठ गया, तो यहाँ कहाँसे मिलें? मामूली ज्वर, सिर-दर्द, अजीर्ण, कोई चोट-फाट, यही साधारण-तया रोग होते हैं। मनोरमाने कहा—अब चिकित्साशास्त्रकी बहुत-सी पढ़ाई सिर्फ पढ़नेहीके लिए होती है; औषध-चिकित्साका तो यह हाल है ही, शल्य-चिकित्साकी और भी कम आवश्यकता पळती है; आजसे दो शता-ब्दियों-पूर्वके चिकित्सकोंको ही इसका बहुत प्रयोग करनेका अवसर मिलता था; तरह-तरहकी नई बीमारियाँ, राजरोग, युद्ध आदि कितने कारण थे,

जो सदा उनके पास रोगियोंकी भीळ लगाये रखते थे। मैं इसके लिए अफसोस नहीं करती; यदि कभी ऐसा दिन आवे, कि कोई रोग ही न हो तो कैसा अच्छा होगा ! कालान्तरमें चिकित्साशास्त्रका प्रचार भी लुप्त हो जाय, तो भी कोई चिन्ताकी वात नहीं; किन्तु हाँ, यदि एक ओर रोगियोंकी चिकित्साका काम कम पळा है, तो दूसरी ओर स्वास्थ्य-विषयक अनेक नियमोंके प्रचारके लिए पूरा समय मिला है, भोजन-आच्छादन, रहन-सहन, सभीमें स्वास्थ्यदायक और पोषक गुणोंका अधिक समावेश होनेका प्रयत्न करना अव चिकित्सकका वळा आवश्यक कर्तव्य हो गया है।

रहीम और मनोरमाने चिकित्सालयके सभी स्थानोंको भली प्रकार दिखाया। रोगियोंके रहने, खाने-पीनेके प्रवन्धके विषयमें क्या कहना है? चारों ओर स्वच्छता-ही-स्वच्छताका साम्राज्य था। रोगी-शुश्रूषक महिलाएँ रोगकी आधी पीळाको तो अपने सहानुभूतिपूर्ण मधुर-वचन और सरस वर्तावसे दूर कर देती हैं। औषधोंका कोष वहुत भारी है। उपयोगी हथियार और यंत्र भी पर्याप्त रखे हुए हैं। चिकित्सालयकी पाकशाला आदि सभीका निरीक्षण करके अव हम लोग वहाँसे विश्राम-स्थानको लौटे। मैंने विचार किया, कल और आजकी वहुत वातें मुझे रोजनामचेमें भी लिखनी हैं। अभी एक वजा है तब तक यह काम करूँगा। शामको आनेके लिए कहकर इस्माइल और प्रियम्वदा तो चली गईं, किन्तु देव विश्राम-स्थानपर पहुँचाकर लौटे। मैंने विश्वामित्रसे रोजनामचा लिखनेकी वात कही। वह भी अपने कमरेमें चले गये। मैं अकेला कलम निकालकर लिखने वैठा। लिखने-योग्य वातोंका तो ठिकाना नहीं था, किन्तु मेरे पास समय

७

शिशु-संसार

दूसरे दिन हम शिशु-उद्यानकी ओर चले। पहले फाटक मिला। उद्यानको आप यह न समझें कि कोई चार-दीवारी या लोहेके सीकचोंसे घिरा बगीचा होगा। इसकी वहां कुछ आवश्यकता ही नहीं है। न पशु हैं, जो भीतर घुसकर नुकसान करेंगे और न कोई चीज चुरानेवाला। द्वार बळा सुन्दर और विशाल है; इसके ऊपर दो-महला मकान है। भीतर जाते ही साथिन फातिमा—जो हमारी प्रतीक्षा कर रही थीं—मिलीं। यद्यपि आपकी अवस्था अस्सी वर्षकी है, तब भी अपने कामको जवानोंकी भांति करती हैं। आप २० वर्षसे विधवा हैं। शिक्षा समाप्तकर व्याह करनेके बाद आपके पति श्रीहृषीकेश द्विवेदी यहां ही आकर बसे। दोनों ही दम्पति

तक्षशिलाके विद्यार्थी थे। पतिने चिकित्साका काम अपने ऊपर लिया था, और फातिमा दस वर्ष तक चिकित्सालयमें ही रोगि-परिचर्याका कर्तव्य-पालन करती थीं। आपका बालकोंसे अगाध प्रेम था, इसीलिए पीछे आप शिशु-उद्यानमें चली आई। तबसे आप इन स्वर्गीय पुष्पोंकी सुगन्धका आनन्द लूट रही हैं। नामसे आप यह न समझ जायँ कि फातिमा मुसलमान हैं। मैं लिख ही चुका हूँ कि धर्म अब उठ गया है।

अब हम लोग आगे बढ़े। उद्यान बहुत ही विस्तृत और दूर तक फैला हुआ था। फूलोंमें शायद ही ऐसा कोई छूटा हो जो वहाँ न हो। बेला, चमेली, नाना भाँतिके गुलाब, चम्पा, जूही, मोगरा, कुन्द और गेंदा सभी थे। उनमेंसे बहुत-से फूल हँस रहे थे, और बहुत-से चुप-चाप हरी पोशाक पहने केवल तमाशा देख रहे थे। बीच-बीचमें कितने ही अनार, नारंगी, सेव, आम, जामन, लीची, कटहल, बेर और अमरूद आदिके पेळ भी थे। टट्टियोंपर अंगूरकी लता भी फैली हुई थी। यहीं बीचमें एक बहुत भारी पीपलका वृक्ष है, जिसके नीचे लळके गर्मियोंमें खेलते हैं। यद्यपि धूप निकल आई थी, किन्तु अभी घासोंपर ओस पळी हुई थी, इसलिए लळके उस वळे पक्के चबूतरेपर थे, जोकि उनके शयनागारके सामने था। धूप वहाँ पहुँच चुकी थी। उनकी सुश्रूषा करनेवाली महिलायें, यही बतला रही थीं कि आज एक बहुत वृद्ध महात्मा आनेवाले हैं। कोई-कोई बळा बालक—किन्तु तीन वर्षसे अधिकका नहीं, क्योंकि तीन वर्षके बाद तो वे विद्यालयमें भेज दिये जाते हैं—पूछ उठता था—अम्मा! क्या वह महात्मा हमारी बळी अम्मासे भी बूढ़े हैं! तब वह बतलाती—मेरे कलेजे! तुम्हारी

बळी अम्माका तो जन्म भी न हुआ था, जब वह महात्मा तुम्हारी अम्मासे भी बूढ़े हो गये थे।

एक शिशु—तो किसके बराबर हैं, हमारे गांवमें किसीको बताओ।

माता—मेरे बच्चे! तुम्हारे गांवमें क्या, पृथ्वी भरमें कोई उतना बूढ़ा नहीं।

दूसरा—अच्छा, इस पृथ्वीपर नहीं सही, मंगलकी पृथ्वीपर तो होगा, बुधकी पृथ्वीपर तो होगा?

माता—कोई होगा, किन्तु उसको तुमने देखा तो नहीं?

दूसरा—तो इसी पृथ्वीको कहां हमने सारा देख लिया?

माता—मेरे प्यारे! देख लोगे। अभी तो चलने लायक हुए हो, अभी तो बोलने लायक हुए हो। जब पृथ्वीका रास्ता, बोली-बाणी खूब सीख लोगे, तब सब देख लोगे।

इतनेमें दूसरी महिलाने कहा—अब काहे इतनी माथापच्ची करते हो विजय? देखो, वह तुम्हारी बळी अम्माकी बाईं ओर सफेद दाढ़ीवाले वही महात्मा आ रहे हैं। देखो, अपना-अपना सितार हाथमें ले लो; आज देखना है, बूढ़े बाबाको कौन अच्छा गाना सुनाता है। मैं भी सुनाऊँगी, जानकी अम्मा भी सुनावेगी, जैनब अम्मा भी सुनावेगी। इतनेमें ध्रुव बोल उठा—मैं भी सुनाउँगी। इसपर सब हँस पळीं। जानकीने कहा—ध्रुव! 'मैं भी सुनाऊँगी' नहीं, 'मैं भी सुनाऊँगा' कहो। ध्रुवने जानकीके पैरोंको कौलीमें भर मुँहको साळीमें छिपाकर कहा, 'मैं भी सुनाऊँगा'। इसपर रोहिणीने कहा—और अम्मा, 'मैं भी सुनाऊँगा'। जैनबने कहा, लो यह

दूसरी आफत आई। रोहिणी ढाई वर्षकी लळकी थी, जैनवने उसे गोदमें ले मुँह चूमकर कहा—मेरी विटिया! लळकियाँ ऐसे नहीं बोला करतीं। कह, 'मैं भी सुनाऊँगी'।

रोहिणीने कहा—हूँ! ध्रुव भैया यही तो कहता था, तव जानकी अम्माने टोका।

जैनव—तू वेटी है न?

रोहिणी—हाँ! तेरी वेटी हूँ, जानकी अम्माकी वेटी हूँ, वळी अम्माकी वेटी हूँ कि! कमाल भैयाकी तो वहिन हूँ। शफी भैया भी, देख, रोहिणी वहिन—रोहिणी वहिन कहता है। ध्रुव भैया भी वहिन कहता है। तो खाली वेटी कैसे हूँ, वेटी भी हूँ, वहिन भी हूँ।

जैनव—अच्छा वूढ़ी दाई! तुम वेटी भी हो, वहिन भी हो, लेकिन वेटा और भैया तो नहीं न हो?

रोहिणी—हाँ! नहीं हूँ।

जैनव—अच्छा! तो वेटा, भैया, 'सुनाऊँगा' कहें तो ठीक, और वेटी, वहिन 'सुनाऊँगी' कहें तो ठीक। इतना ही नहीं, वूढ़े वावा, पिता, चाचा सुनाऊँगा कहें तो ठीक और वूढ़ी अम्मा, छोटी अम्मा, वळी अम्मा सव सुनाऊँगी कहें तो ठीक।

इतनेमें हमलोग पहुँच गये और वात यहीं समाप्त हो गई। सव माताओंने अभिवादनके लिए पहले हाथ उठाया, जिसे देख वच्चोंने भी वैसा ही किया और छोटी गाळियोंमें रखे अत्यन्त छोटे वच्चोंको छोळकर हाथ सवने उठाये।

मुझे वे बच्चे सचमुच खिले हुए स्वर्गीय फूल-से जान पड़े; उनके लाल-लाल होंठ और गुलाबी गालोंपर अस्फुट हँसीकी रेखा थी। सबके शरीरपर एक प्रकारके गुलाबी रंगके फलालैनके कपड़े थे। सबके पैरोंमें छोटे-छोटे मोजे और छोटे-छोटे सुन्दर जूते थे। सिर मुलायम टोपीसे ढँका था। स्वागत समाप्त होनेके साथ ही मैंने देखा, बालक-बालिकायें सभी—जिनकी वहाँ पहिचान होनी कठिन थी—अपने छोटे-छोटे तीन तारवाले खिलौने-सितारको ले लेकर बैठ गये। कोई मिज्राबको उल्टा पहिनता और वह अँगुलीमें नहीं जाती, तो पासके बड़े लड़केसे कहता—

'मोहन भैया! जल्दी इसे अँगुलीमें लगा दे तो।'

मुर्तुजाने एक बार कानके पास ले जाकर, तारको मारा तो 'दिम'सी आवाज आई, बस क्या था। उसने समझा, मैं ही बाजी मार ले जाऊँगा। तुरंत प्रसन्नतासे फूला हुआ प्रियम्वदाके पास दौड़ा आया, हाथ पकड़कर थोड़ी दूर ले जाकर बोला—

अम्मा! जरा गोदी तो ले। जब गोदी चढ़ गया, तो अपने बाजेको कानके पास ले जाकर एक बार तारपर मारा, किन्तु अबकी तार हाथसे दबा था, अतः आवाज नहीं हुई। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ क्या, उसकी आशा हीपर पानी फिर गया? तो भी कहा, माँ! अभी नहीं न सुना; ठहरी रह, सुनाता हूँ न। प्रियम्वदा तो अभिप्रायको जान गई थी। उसने तारपरसे अँगुली जरा खिसका दी। मुर्तुजाने अबकी मारा, तो 'दिम'-से हुआ। बड़ा खुश होकर बोला—देख! मैं अच्छा बजाता हूँ न? प्रियम्वदाने कहा—हाँ बेटा! तू बड़ा अच्छा बजाता है। आज पितामहको सुना तो। इसपर

मुर्तुजाने पूछा—अम्मा ! पितामह कौन हैं ? इसपर प्रियम्वदाने बताया—वही बूढ़े-बूढ़े सफेद दाढ़ीवाले। अब मुर्तुजाने एक बात चालाकीकी कही—'माँ ! अब चुप-से बैठ जाता हूँ, नहीं तो विजय भैया कहेगा—अम्मासे सीख आया है।' यह कह मुर्तुजा जाकर एक जगह बैठकर, खूब आलाप लेने-जैसी शकल करके कुछ गुनगुनाते सितार छेळने लगा। देखा-देखी और कई बच्चोंने भी ऐसा ही करना आरम्भ किया।

मैं गाळियोंपर बैठे बच्चोंकी ओर देखने लगा। कोई पासमें खळी माताकी अँगुली पी रहा है, कोई 'आगूं'-'आगूं' कर रहा है। कोई हँसकर अपनी नई सम्पत्ति दोनों अगली दँतुलियोंको दिखा रहा है। सभी बच्चे हृष्ट-पुष्ट और, स्वस्थ थे। कोई दुबला, कुरूप और रोंदू न था। मैं एक छः-सात मासके बच्चेके पास गया, तो मेरे हाथ बढ़ाते ही वह हाथ बढ़ाकर मानों मेरी ओर आनेकी इच्छा प्रकट करने लगा। फिर क्या था, उसको मेरी गोदमें देख बहुत-से बारी-बारीसे गोदमें चढ़े। सभी लळकोंकी संख्या डेढ़सौकी थी। देर होते देख मुर्तुजाने अब की प्रियम्वदाके पास जाकर कहा, माँ ! अब सुनाऊँ न—अब क्या देरी है ? इसपर प्रियम्वदाने कहा—हाँ ! रह जा; अभी बुलाकर पितामहको बैठाती हूँ, तब सुनाना। सबको देखनेके बाद फातिमा ने बैठनेके लिए कहा। लळकोंहीमें हमारे बैठनेके लिए फर्शपर थोळी जगह मिली। हमारे बैठते ही, सब बालक और करीब-करीब हो गये। शिशु-उद्यानमें सब मिलकर तीस मातायें हैं। सभी अपनी-अपनी गोदमें तथा आस-पास बच्चोंको लिये बैठ गईं। डेढ़ वर्षके ऊपरवाले लळकोंने हाथ

में सितार लिया था, और छोटोंमेंसे किसीने बिल्ली, किसीने कुत्ता, किसीने खरगोश, किसीने सीटी, किसीने गुळिया, किसीने लकळीके अक्षरोंके कटे अंश, किसीने कोई खिलौना, किसीने कोई खिलौना। अब बळी अम्मा बोलीं—

बच्चे साथियो! हमारे सबके पितामह यहां अपने बच्चोंको देखने आये हैं। अब उन्हें सब लोग अपना-अपना गुण दिखाओ। पितामह बाबा बहुत दिनपर आये हैं। पहले जानकी अम्मा भजन सुनावेगी, तब जैनब अम्मा सुनावेगी, तब देखो कौन सुनावेगा? विजय झट-से बोल उठा—मैं। मुर्तुजा पहलेसे सँपर रहा था, किन्तु धोखेसे पहले न बोल सका, तो भी जल्दी-जल्दी उसने कह डाला 'मैं'। जानकीने हाथमें वीणा ले गीत गाया।

गानेका कहना ही क्या था? यद्यपि भाषा बालकोंकी थी, भाव भी बालकोंका था, किन्तु स्वर, रूप, तान सबसे निराला था। बीच-बीचमें मैं देखता था, कई एक बच्चे बळे ध्यानसे सितारको हाथसे छेळते कुछ गुन-गुनाते हुए तन्मय थे। अब जैनबने वीणाको हाथमें लिया। विजय—उसका शागिर्द—पास बैठा था। ऐसे भी वह सावधान ही बैठा था, किन्तु अब विशेष तौरसे एक बार खळा हो आलथी-पालथी मार, ठीक जैनबकी तरह उसकी दाहिनी ओर बैठ गया। जैनबने मीठे स्वरमें एक गीत सुनाया।

गीत समाप्त होते ही ज्योंही जैनबने वीणा अलग रक्खी, विजय गोदमें जा बैठा और धीरे-से कानमें बोला—माँ, वही उस दिनवाला गीत न सुनाऊँ? जैनबने कहा—कौन सा? इसपर विजयने कुछ फुसफुसाया। जैनबने कहा—हाँ बेटा, हाँ वही। अब विजय धीरे-से मेरे पास आया, और

बोला—पितामह ! अब एक गीत मैं सुनाऊँगा । मुर्तुजाने कहा—नहीं पितामह ! पहले मैं सुनाऊँगा, तब विजय भैया सुनावेगा। विजयने कहा, नहीं पहले मैंने कहा था, पहले मैं सुनाऊँगा। मुर्तुजाने फिर अपना पहला आग्रह दुहराया। अब बळी अम्माने झगळेका जल्दी निपटारा होते न देख, कहा—अच्छा, दोनों भाई मेरे पास आओ। दोनों दौळकर फातिमाकी गोदमें चले गये। तब फातिमाने विजयसे पूछा—उस दिन, विजय, जब तुम और शफी मेरे पास थे, मैं सेबका टुकळा तुझे जब देने लगी, तो तुमने क्यों लेनेसे इन्कार किया? विजयको अम्माके हाथके फलसे इन्कारका शब्द कळा मालूम हुआ। झट गलेसे लिपटकर कहने लगा—अम्मा! तू तो यों ही कहती है; इन्कार थोळे ही किया? यह तो कहा था कि पहले शफीको दे, तो फिर मुझे दे। फातिमाने पूछा—अच्छा, ऐसा ही क्यों कहा?

विजयने कहा—तैंने ही नहीं बताया था, कि पहले छोटे भाईको देकर तब अपने खाओ। शफी छोटा भैया है, मैं बळा भैया हूँ, तो पहले कैसे खा जाता? प्रह्लाद भैया, इब्राहीम भैया, जमशेद भैया जब विद्यालय नहीं गये थे, तब मेरे या श्याम भैयाके बिना खाये कहाँ खाते थे?

फातिमाने कहा—हाँ! मेरे लाल! ठीक तो कहता है। अच्छा तो मुर्तुजा छोटा भैया है, या बळा भैया?

विजय—छोटा भैया।

फातिमा—तो फिर उसकी बात पहले हो कि तुम्हारी? विजयको अपनी गलती समझमें आ गई। उसने हँसते हुए कहा, हाँ! मुर्तुजा पहले तू

गा, तब मैं गाऊँगा। बळे भैया छोटे भैयाकी बात होते देख, अब मुर्तुजाके मनने भी पलटा खाया। उसने कहा—विजय भैया बळा भैया है, पहले वह गा लेगा, तब मैं गाऊँगा। विजयने कहा—मुर्तुजा छोटा भैया है, पहले वह गायेगा, तब मैं गाऊँगा। अब एक दूसरा अळंगा खळा देख, बळी अम्माने कहा—मुर्तुजा! बळे भैयाकी बात छोटे भैयाको माननी चाहिए न?

मुर्तुजा—हाँ, अम्मा! माननी चाहिए।

फातिमा—तब जैसा विजय भैया कहता है, वैसा करो। अब मुर्तुजा दौळकर प्रियम्वदाके पास गया। और बोला—अम्मा! मेरे तारोंको ठीक तो कर दे। प्रियम्वदाने लेकर जरा तारको इधर-उधर खींच दिया। अब मुर्तुजा दाहिने पैरसे पालथी मार और बायेंके सहारे सितारको हाथमें पकळे, ऐसे बन बैठा, मानो तानसेन ही उतर आया हो। थोळी देर खींचने-खाँचनेके बाद बोला—अभी गीत मैंने नहीं सीखा है, खाली बाजा सुनाऊँगा। मैंने और विश्वामित्रने कहा—हाँ! बाजा ही सुनाइये। अब मुर्तुजाने एक बार अँगुली तारपर मारी, किन्तु वह तारतक न पहुँचकर पहले ही रुक गई। बगलवाले लळके हँसना ही चाहते थे कि उसने फिर एक बार खूब साधकर अँगुली मारी और अब 'दिम'-सी आवाज आई। प्रियम्वदा, फातिमा, मैंने और सभीने इसपर शाबाशी दी। मुर्तुजा बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—अच्छा, अब विजय भैयाका गीत हो। विजय, जो अब तक बळी अम्माके पास बैठा था, उठकर जैनबके पास जाकर बोला—माँ! तू जरा बजा, तो मैं गाऊँ। विजयने एक-दो गीत खूब मिहनतसे याद किये थे। वह बहुधा जैनबकी गोदमें बैठकर उसके सितार बजानेपर गाया करता

था। इसीलिए अबकी फिर उसने बजानेको कहा। जैनबके दानादिर करते ही विजयने अपना गाना आरम्भ किया...

शिशुके मधुर स्वर और अकृत्रिम कंठसे निकले सरल गानने प्राणोंको प्रफुल्लित कर दिया। बारी-बारीसे दो-चार और गवैयोंने अपने करतब दिखलाये। इसके बाद अक्षरके खिलाळियोंका नम्बर आया। मरियम और रुक्मिणी सबसे पहले आईं। प्रियम्वदाने लकळीके अक्षरोंके बक्सको हाथमें लेकर उसमेंसे एक नीचे रखकर कहा—बूझो यह क्या है। रुक्मिणीके अभाग्यसे उसकी ओर अक्षरकी ऊपरी लकीर पळी थी, जिससे जब तक वह विचार करे तब तक मरियमने बोल दिया—'क'। अब क्या, मरियमके आनन्दकी कोई सीमा न थी। प्रियम्वदाने कहा—बेटी रुक्मिणी, कोई परवाह नहीं, आओ तुम दोनों एक सीधमें पाँतीसे खळी होकर अबकी बूझो। अबकी प्रियम्वदाने फिर एक अक्षर फेंका। गिरतेके साथ दोनोंने एक साथ 'र' कहा। बळी अम्माने दोनोंको गले लगाया। अब बळी अम्मा सबके कुत्ते, बिल्ली, बत्तक, गुळिया आदि सभी खिलौनोंको लेकर पाँतीसे रखकर कहने लगीं—प्रियव्रत! खरगोश ले आओ तो। प्रियव्रतने झट खरगोश उठाकर हाथमें दे दिया। ऐसे ही वह एक-एक जानवरका नाम लेती जाती थीं, और बच्चे ला-लाकर देते जाते थे।

इसके बाद सारा समाज वहाँसे उठ खळा हुआ। अत्यन्त छोटे बच्चे भी इस तमाशेमें शामिल थे। मातायें गोदमें उन्हें लिये थीं। फूलोंके पास जाकर इसकी परीक्षा ली गई कि कौन कितने फल-फूलोंका नाम जानता तथा पहिचानता है। वहाँ मौलसरीकी डालियोंमें बहुत-से पालने लटक

रहे थे ; जिनके बारेमें बताया गया कि छोटे-छोटे बच्चे इन्हींपर सोते और झूलते रहते हैं। पालनोंके गद्दे बहुत ही मुलायम थे। एक नल सब झूलनोंको धीरे-धीरे झुलाती रहती थी। हमलोग यह देख ही रहे थे कि इसी समय नौ का घंटा बजा। आज हरी घासपर भोजनका प्रबन्ध था। इसी समय बाहरसे और भी बहुत-सी स्त्रियां आती दीख पड़ीं। ये लड़कोंकी जननियाँ थीं। वस्तुतः यहाँ 'माता' शब्दसे उन सभी महिलाओंका ग्रहण किया जाता है, जो बालककी रक्षा, शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध करती हैं। सब प्रकारकी अनुकूलता देख, छोटे-छोटे बच्चोंको भी जननियां, प्रायः शिशु-उद्यानहीमें रख आती हैं। रात्रिमें वर्ष दिन तकके बच्चोंको जननी अपने पास रखती हैं। दिनमें नव-जात शिशुओंवाली मातायें यदि काम करती हैं, तो ग्रामहीमें, सो भी दो घंटे; बाकी समय शिशु-उद्यानहीमें बालकोंका मन-बहलाव करती हैं। शिशु-उद्यान ग्रामवासियोंका क्रीळोद्यान है, जहांके पुष्पों और मनोरंजनकी और सामग्रियोंमें कोमल शिशु भी शामिल हैं। उनके मधुर-आलापके सुनने, उनके मनोमोहक खेलोंको देखनेकी इच्छासे कितनेही नर-नारी अपने अवकाशके समयको वहाँ व्यतीत करते हैं।

आजके राष्ट्रका ध्येय तो यद्यपि मनुष्य-मात्रके जीवनको आनन्दमय बनाना है, और ऐसा करनेमें उसे अच्छी सफलता भी हुई है, किन्तु बालकोंके लिए प्रस्तुत की गई सुखकी सामग्रियां तो पुराने सम्राटोंके राजकुमारोंको भी शायद नसीब न थीं। साधारणतया बालकोंको थोळा-थोळा दिन-रातमें तीन-तीन घंटेपर सात बार जलपान और भोजन कराया जाता है। पहला कलेवा उनका ६ बजे होता है, जबकि दूधके साथ ऋतुके उपयोगी

कुछ मिष्ठान्न दिये जाते हैं। इस वक्त नौ वजेके लिए खीर, कुछ फल, ऐसे ही पदार्थ थे। वारह् बजे, भात-दाल, रोटी-तरकारी—जिसे पहले कच्ची रसोई कहा जाता था—का प्रवन्ध रहता है। ३ वजे फिर फल, दूध। ६ वजे भी कुछ फल। ९ वजे घीकी पकी नमकीन और मीठी चीजोंके साथ कुछ दूध भी और वारह् वजे रातको फिर दूध और कुछ फल। भोजनका सिलसिला तीन-तीन घंटेपर वरावर रहता है। परन्तु तीन समय—प्रातः, मध्याह्न और रात्रिके नौ वजे—छोळकर, पेट-भर नहीं खिलाया जाता। खाना हजम होनेके लिए लळके दौळ-धूप किया करते हैं। आँख-मिचौनी आदि पुराने खेल-कूद भी खेले जाते हैं। छोटे-छोटे फुट-वालोंको लेकर लळके खूव खेलते हैं। हरी-हरी दूवपर इन छोटे-छोटे जवानोंकी कवड्डी भी वळी भली मालूम होती है। वागमें एक अखाळा भी इनके लोट-पोट और पहलवानीके लिए है। सारांश यह कि भोजन, वस्त्र, शिक्षा और शारीरिक सुधार सभीपर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। हाँ! जो मातायें मैंने आते देखी थीं, उन्होंने अपने नवजात शिशुओंको दूध पिलाना शुरू किया, और कितनी ही लळकोंके पासमें खिलाने वैठ गईं। खाना खा सकनेवाले लळकोंकी मातायें अपने-पराये सभी वच्चोंको साथमें लेकर समान भावसे खिलाने लगती हैं। वास्तवमें इस समयके नर-नारियोंके हृदयसे संकीर्णता निकल गई है। उनके हृदय विशाल हैं।

जन्म देनेवाली माताओंहीके लिए नहीं, उन माताओंके लिए भी जो कि उद्यानमें बालकोंकी रात-दिन सेवा-सुश्रूषा करती हैं, यह वहुत भारी मानसिक क्लेशकी वात है, कि तीन वर्ष वाद लळके दूर-दूरके

वळे-वळे विद्यालयोंमें भेज दिये जाते हैं। किन्तु राष्ट्रके कल्याणके लिए, और उन अपने वालकोंके हितके लिए वे सव सहन करती हैं।

भोजनके समाप्त होनेपर अव हमलोग कोठेपरके वस्तु-संग्रहालय की ओर चले। कुछ वालक तो स्वयं छोटी-छोटी सीढ़ियों-द्वारा चढ़ आये और कुछको माताओंने ऊपर पहुँचाया। विजय सभी वालकोंमें होशियार था। उसका शरीर भी हृष्ट पुष्ट था। वह जैनवकी अंगुली पकळे हमारे साथ-साथ था।

संग्रहालयमें घुसते ही देखा, नीचे तरह-तरहके जीव-जन्तु, अन्न आदि वस्तुएँ रखी गयी हैं। घनुप, वाण, फरसा, गंळासा, लाठी, वंदूक तमंचा, भाला, कवच और खोद दीवारोंमें टँगे हैं। छोटी-छोटी तोपें भी रखी हैं। दीवारोंके ऊपर मनुष्य-जातिके वळे-वळे नेताओंकी जीवन-घटनाओं-सम्वन्वी वळे-वळे चित्र हैं। कहीं महात्मा सुकात प्रसन्नता-पूर्वक विपके प्यालेका पान कर रहे हैं। कहीं वुद्ध रक्तके प्यासे 'अंगुलि·माल' के प्रहारका कुछ भी ख्याल न करके प्रसन्न-वदन खळे हैं। कहीं गांघी सळकपर कंकळ कूट रहे हैं। कहीं इब्राहम लिंकन विपत्तियोंकी घमकीका कुछ भी ख्याल न करके मनुष्योंकी दासता हटानेके लिए वलिदान हो रहे हैं। कहीं जोन स्वतंत्रताके लिए निछावर हो रही है। कहीं अशोक युद्धके वाद साम्राज्यसे विरक्त हो रहे हैं। इसी तरह अनेक प्रकारके चित्र हैं।

मुझसे यह भी कहा गया कि वालकोंको वोलते फिल्मों-द्वारा भी वहुत-से ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक वातोंका ज्ञान कराया जाता है। ग्रहोंका भ्रमण, रात-दिनका होना, चन्द्रमाका घटना-वढ़ना भी उसीके द्वारा

दिखाया जाता है। बालकोंको ये सारी शिक्षायें मनोरंजन और खेलके रूपमें ही मिल जाती हैं। दूसरोंका काम जिज्ञासा उत्पन्न करनेकी सामग्री एकत्रित कर देना है। जब जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है, तो बालक अपनी जिज्ञासा-पूर्तिके लिए सब कुछ सहन करनेको तैयार हो जाता है। तब हर एक बात उसे जल्दी स्मरण तथा हृदयंगम भी होती जाती है। उस समय ज्ञानको घोलकर पिलाने या ठूँसनेकी आवश्यकता नहीं होती। मैंने वस्तुओंको देखते समय बीच-बीचमें कभी-कभी किसी लळकेसे किसी वस्तुका नाम पूछा, या नाम बोलकर वस्तु दिखानेको कहा, तो बालक बळी प्रसन्नता-पूर्वक सन्तोष-जनक उत्तर देते थे। फातिमाने बताया—लळके स्वयं अँगुली पकळकर माताओंको खींच लाते हैं। कभी किसी वस्तुका नाम पूछते हैं, कभी किसी चित्रको देखकर चित्रित घटनाकी कथा सुनने बैठ जाते हैं। कहनेवालेसे अधिक उनको उन्हें देखने-सुननेमें आनन्द होता है। इसी समय यदि कभी भोजनका समय आ जाता है, तो बळी अरुचि-पूर्वक वहाँसे भोजन करने उठते हैं। यद्यपि तीन वर्ष तक उनको कोई पुस्तक पढ़नेको नहीं दी जाती, न लिखाया ही जाता है, किन्तु ज्ञानके साथ-साथ, उन्हें बहुत-सी संख्या तथा अक्षरों और अंकोंका बोध स्वयं ही खेलते-खेलते हो जाता है। ध्रुव, सप्तर्षि आदि कई तारोंको वह पहिचानने लगते हैं। वस्तुओंकी संज्ञाका कोष उनका बळा हो जाता है। माता, पिता, अभिभावक, और आस-पासके वायुमंडलको भी शुद्ध भाषाका प्रयोग करते देख उनकी भाषा बहुत शुद्ध होती है।

जब वहाँसे देखकर हमलोग उतरे, तो बालकोंके शयनागारकी

ओर चलनेके लिए कहा गया। जाकर देखा—छोटे-छोटे बालकोंके लिए जगह-जगह झूलने टँगे हुए हैं। बालकोंके सोनेके लिए पलंगपर अच्छे-अच्छे मुलायम गद्दे भी बिछे हुए हैं। सर्दीमें कमरेको गर्म करनेका पूरा प्रबन्ध है। रात्रिमें बालक बहुत कम यहाँ रह जाते हैं। अधिकतर अपनी जननियों हीके पास सोते हैं। कुछ जो रहते हैं, वह अपनी उद्यानकी माताओंकी गोदमें सोते हैं। शयनागारकी बगलमें भोजनागार है। बगलमें पाकशाला है, जहाँ बालकोंके लिए ताजा-ताजा भोजन बनता रहता है। अब ग्यारहका समय नजदीक आ रहा था, अतः उद्यानका और अवलोकन करना न हो सका। दूरसे छोटी-छोटी छतरियोंके नीचे कुछ मूर्तियाँ-सी दिखाई पळीं। पूछनेपर मालूम हुआ कि वहाँ बालकोंके इष्ट-देव ऐतिहासिक महापुरुषोंकी संगमर्मरकी मूर्तियाँ हैं, जहाँ पहुँचते ही बालक 'कथा'-'कथा'की धुन लगा देते हैं। बिना उस महापुरुषकी एक दो जीवन-घटना सुने चैन नहीं लेने देते।

जानकीने घळी देखकर बतलाया कि अब ग्यारहमें पाँच मिनट बाकी हैं। हमलोग उद्यान-परिवारसे विदा हुए।

उस दिन उतना ही देखना था। दूसरे दिन अब यहाँसे नालन्दाको प्रस्थान करना था। विश्राम-घर लौट आनेपर विश्वामित्रसे यात्राके समय तथा मार्ग आदिपर विचार हुआ। विश्वामित्रने पूछा—क्या यहींसे सीधे नालन्दा चलना होगा?

"सीधे तो चलना होगा, किन्तु सीधे इसी अर्थमें कि रेलमें चढ़कर फिर बीचमें उतरना नहीं।"

"रेलसे चलनेमें समय कुछ अधिक लगेगा; यदि विमानसे चलना हो,

तो आध घंटेका रास्ता है।"

"इतनी जल्दी चलना भी अभीष्ट नहीं है। रेलसे चलो, तिसमें भी जो ट्रेन सब स्थानोंपर खळी होती जाय, उससे। और जाना भी उस लाइनसे चाहिये, जिसके द्वारा मैं आया गया हूँ; क्योंकि मैं रास्तेके आस-पासकी वस्तियोंके परिवर्तन आदिको देख सकूँगा। अब इधर जल्दी तो आना नहीं है, इसलिए मेरी सलाह है कि यहाँसे रक्सौल, सुगौली, मोतीहारी, मुजफ्फरपुर, पटना और बख्तियारपुर होते नालन्दा चलें, किन्तु रास्तेमें कहीं विश्राम नहीं लेना है—केवल जहाँ गाळी बदले, वहाँ बदलने भरको उतरना है।"

"गाळी भी पटना ही बदलेगी। बख्तियारपुर जानेका काम नहीं, पटनासे सीधी नालन्दाको लाइन गई है। रेलवे लाइनोंमें भी बळा परिवर्तन हुआ है। अब भारतमें क्या, पृथ्वी-भरकी लाइनें एकसी ही चौळी हैं। वह चौळाई आपके समयके ई० आई० रेलवेसे कुछ कमकी है। इसलिए अब बी० एन्० डबल्यू० रेलवेकी छोटी लाइन, और बख्तियारपुर-बिहार वाला 'रेलका बच्चा' नहीं मिलेगा।"

"विश्वामित्र! 'रेलका बच्चा' तुमने कैसे जाना?"

"किताबोंमें देखनेसे।"

"किन्तु, इसके सम्बन्धकी कथा तुमको न मालूम होगी; सुनो। तुम तो इतिहासके पंडित ही हो। उस समयके लोगोंमें मूर्खता बहुत थी। कितने गाँवोंमें कोई चिट्ठी आनेपर दूसरे गाँवमें बँचवानेको जाना पळता था। जब मर्द ही अक्षर-शून्य थे, तो स्त्रियोंके लिए क्या पूछना? कोई देहाती

आदमी बख्तियारपुरकी उस समयकी बळी लाइनकी गाळीपर सवार था। उसने स्टेशनकी दूसरी ओर छोटे-छोटे रेलके डब्बे देखे, जो उसकी गाळीके सम्मुख वैसे ही थे, जैसे बापके सामने उसका छोटा बच्चा। उसने ऐसी छोटी रेलगाळी अब तक न देखी थी। अपने पासके किसी आदमीसे पूछा, जो स्वयं भी निरक्षर—किन्तु, तर्क-कुशल—था, कि यह क्या है। उसने कहा—'रेलका बच्चा'। पहलेने पूछा—क्या रेल भी बच्चा देती है? उसने कहा—देख ही रहे हो; हाथीका बच्चा हाथी नहीं देखा है? उसने कहा—हाँ, सच कहते हो, बिलकुल शकल-सूरत भी मिलती है; खाली छुटाई-बळाई हीका तो फर्क है। अच्छा, तो बेचारा 'रेलका बच्चा' भी गया, उसके बोलनेवाले भी। पटना तक जब गाळी नहीं बदलेगी तब तो गंगामें पुल बँध गया होगा।"

"१९५० हीमें।"

"अच्छा तो कल किस समय चलना चाहिये?"

"कल साथी इस्माइलसे बात हुई थी। कहते थे कि मोहनपुर स्टेशनपर चढ़ना है। वहाँवाले भी बहुत उत्सुक हैं। उनका आग्रह तो एक रात आतिथ्य करनेका था, किन्तु आपकी दूसरी इच्छा देखकर उसमें बाधा नहीं डालना चाहते। कल जलपानके बाद यहाँवालोंकी अन्तिम फूल-माला लेकर आठ बजे चलना चाहिये। साढ़े आठ बजे वहाँ पहुँच जायँगे। ग्यारह बजे मध्याह्न-भोजन करके वहाँसे बारह बजे रेलपर सवार होना चाहिये।"

"ठीक है, यही प्रबन्ध करो।"

विश्वामित्रने, इन बातोंको इस्माइलसे कहा। और इसकी सूचना

उसी दिन मोहनपुर, तथा बीचके स्टेशनों एवं नालन्दाको भेज दी गई। रेलका समय देखकर ज्ञात हुआ कि गाळी सवारी-गाळी है, जो सब जगह ठहरती जाती है। हमलोग इस तरह चलकर परसों सवेरे साढ़े छः बजे नालन्दा पहुँच जायँगे।

८

रेलकी यात्रा

आज जलपानके पहले मेरे निवास-स्थानपर प्रियम्वदा और इस्माइल के अतिरिक्त देवमित्र, आचार्य विश्वामित्र आदि अनेक व्यक्ति आ गये थे। हमलोग साथ ही भोजनागारको गये। आज संस्थागारमें गाँवकी ओरसे फूल-माला देकर मेरी विदाईका प्रवन्ध हुआ था। जलपानके वाद हमलोग संस्थागारमें पहुँचे। वहाँ सब लोगोंकी ओरसे देवमित्रजीने मेरे लिए प्रेमोद्गार प्रगट किये। साथ ही मुझे अष्ट-धातुके पत्रपर स्वर्णाक्षरोंमें मुद्रित एक काव्यमय अभिनन्दन-पत्र दिया गया। कवयित्री वही प्रियम्वदा थीं, यह अत्यन्त प्रसन्नताकी वात थी। मैंने उत्तरमें, ग्रामवासियोंके अकृत्रिम प्रेमके प्रति अपनी कृतज्ञता तथा सन्तोप प्रकट किया।

अव सवके अभिवादन और प्रेममयी दृष्टिसे आप्लावित हो, सेवग्रामसे

मैं और विश्वामित्र विदा हुए। साथमें हमारी मोटरपर इस्माइल-दम्पति, तथा देवमित्र भी चले। हमारे चलनेकी सूचना फोन-द्वारा मोहनपुर पहुँच गई थी।

गाँवके बाहर ग्रामणी तथा अन्य सभ्य स्त्री-पुरुषोंने पहले हमारा स्वागत किया, और कहा, सब ग्रामवासी संस्थागारमें प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमलोग मोटरसे बिना उतरे; सीधे संस्थागारमें पहुँचे। मकानोंकी सुन्दरता और ढंग बिल्कुल सेवग्राम ही सा था, बल्कि देखनेवालेको एक ही ग्रामकी भ्रान्ति हो सकती थी। विश्वामित्रने बतलाया, स्थानके संकोच, जन-संख्याकी कमी-बेशीसे गाँवकी लम्बाई-चौळाईमें भले ही फर्क पळ सकता है, किन्तु श्रेणियाँ, सळकें, संस्थागार आदि सबके नक्शे देशके सभी ग्रामोंमें एक-से होते हैं। जल-वायुकी विशेषतासे भी कुछ आवश्यक परिवर्त्तन देखा जाता है।

मोहनपुरके विषयमें मालूम हुआ, यहाँकी जन-संख्या सेवग्रामके ही बराबर है। यहाँ बर्फ बनानेका एक कारखाना है। और दूसरा व्यवसाय आस-पासके १४-१५ फलवाले गाँवोंके फलोंको भिन्न-भिन्न जगहोंपर चालान करना है। इस पर्वतके फल लंका और बर्मा तक जाते हैं। इतनी दूर तक जानेमें कोई भी फर्क न पळे, इसलिए उनके रखनेकी गाळियोंमें चारों ओर बर्फ रक्खी रहती है। फलोंको ढोनेवाली मोटरोंपर लोहेके जालीदार बळे-बळे फल रखनेके बर्तन रहते हैं। एक मोटरपर ऐसा एक ही बर्तन रहता है। फलोंके बोझसे नीचेवाले फलोंको बचानेके लिए बीच-बीचमें दूसरी जाली रखी रहती है। मोटर-गाळीके स्टेशनपर पहुँचते ही, उठानेकी कल-द्वारा

सारा वर्तन ही उठाकर रेलके डब्बेमें रख दिया जाता है । रेलका डब्बा ऐसे नापका बना होता है, कि पाँच मोटरोंके माल उसमें बिल्कुल ठीक अँट जाते हैं। फलोंकी गिनती देना बगीचोंवालोंका काम है। इस प्रकार कोलम्बो (लंका)के लिए जानेवाला सेब एक ही गाळीमें मोहनपुरसे वहाँ पहुँच जाता है।

मोटरसे उतरकर संस्थागारके रंगमंचपर पहुँचनेपर, मोहनपुरके नर-नारियोंने वैसा ही हार्दिक स्वागत किया, जैसे कि सेवग्रामवालोंने किया था। वहाँके ग्रामणीने भी मेरे विषयमें अपने सद्भाव ग्राम-वासियोंकी ओरसे प्रकट किये। मैंने भी इसके लिए कृतज्ञता प्रकट की। इसके बाद फूल-माला दी गई। पीछे सबने भोजनका समय हो जाने से, भोजनागारमें जाकर भोजन किया। सब जगह प्रेम और आनन्दका स्रोत उमळ रहा था। समय न होनेसे यहाँके और स्थानोंको तो नहीं देख सका। संस्थागार और भोजनागार बिल्कुल वैसे ही थे, जैसे कि सेवग्रामके। पूछनेसे पता लगा कि शिशु-उद्यान, चिकित्सालय भी वैसे ही हैं। द्वार भी नदीकी ओर हैं और चिकित्सालयसे थोळा हटकर बर्फका कारखाना है। ये बातें स्टेशनको चलते समय मुझसे कही गई थीं। मैंने बार-बार उधर इस ख्यालसे देखा कि कारखानेकी चिमनी तो दिखाई देगी, किन्तु मुझे यह स्मरण नहीं था कि काम तो बिजलीसे होता है, फिर चिमनीका क्या प्रयोजन— धुआँ-धक्कळका क्या काम?

अब स्टेशनपर पहुँचे । पहलेसे ही मालूम हुआ था कि गाळीके आनेमें दो मिनटकी देरी है। अतः हमलोग थोळी देर अतिथि-विश्राममें बैठ गये

थे; क्योंकि विश्वामित्रने बतलाया था कि अब न स्टेशनोंपर पान-बीळी-सिगरेट और न मिठाइयोंकी दूकान, न 'कुली चाहिये—कुली चाहिये'का तूफान, न मुसाफिरखानोंकी 'भेळिया-धसान', और न भूखे-भिखमंगोंका 'जय जजमान' है। मैंने पूछा—खैर और न सही, किन्तु मुसाफिरखानों विना तो मुसाफिरोंको अवश्य तकलीफ़ होती होगी? इसपर विश्वामित्रने बताया तकलीफ काहेकी? खामखाह तो कोई उतरता नहीं। जब जहां जाना होता है, वहीं तो उतरता है। गट्ठर, बिस्तरेका तो कोई बखेळा है ही नहीं। अभीष्ट ग्राम समीप रहा, तो अतिथि-विश्राममें पैदल ही चलकर पहुँच गये। नहीं तो फोनमें दो अक्षर बोलनेपर तो मोटर आती है।

आखिर गाळी भी आ गई। आज पूरी दो शताब्दियों-बाद रेलकी सूरत देखी। लाइन तो वळी लाइनसी थी; डब्बे भी बहुत अच्छे, सुन्दर रँगे हुए थे। नई बात यह मालूम हुई कि इंजन चिन्हाई ही नहीं पळता था। न धुएँका फक-फक, न कालीमाईके रहनेका औंधा हौदा। इंजनके आगेका आकार हवाके धक्केको कम करनेके लिए नोकदार बना है, इंजनकी दूसरी पुरानी विशेषतायें नहीं हैं। यह सब काया-पलट बिजलीके कारण हुई है। अब कोयला-पानीसे भाफ बनानेकी तो आवश्यकता है नहीं। बिजली भीतर भरी रहती है। कुछ तो कोष बाहरसे लाकर रखा जाता है, और कुछ खुद रेलके पहियोंसे उत्पन्न बिजलीके सञ्चय करनेसे हस्त-गत कर लिया जाता है। आज-कलकी दुनिया अर्थ-शास्त्रके तत्त्वोंपर बहस करनेमें, जहाँ बालकी खाल उतारती है, वहाँ श्रम एवं, वस्तुको जरा भी फजूल नहीं जाने देती। मजाल क्या कि एक टुकळा सळा-गला लोहा, एक

जरा-सा शीशीका फूटा टुकळा, एक मामूली चीथळा, एक रद्दी कागजकी चिट व्यर्थ फेंक दी जाय। सभी चीजें गांवके गोदाममें जमा होती रहती हैं, पीछे वहांसे उनके उपयोग करनेवाले कारखानोंमें भेज दी जाती हैं। हां, बाहरसे तो नाम-मात्र ही बिजली लेनी पळती है, और पहियां-द्वारा उत्पन्न बिजलीसेही गाळी चलाना, पंखा चलाना रोशनी करना, भोजनकी गाळीमें रसोई बनाना, कमरे गर्म रखना, नहानेका पानी गर्म करना इत्यादि सब काम होते हैं। स्टेशनपर भी, न टिकटोंकी हे-हे पट-पट न पुलिसकी फटकार। पुलिसके बारेमें तो इतना ही ज्ञात हुआ कि ग्राम-सभाके चुनावके साथ कुछ लोग इस कार्यके लिए चुन लिये जाते हैं। चोरी आदिका तो डर ही नहीं है। ऐसे तो शिक्षित-समाज अकारण मार-पीट आदिपर उतर नहीं आता, किन्तु मनुष्य-स्वभाव है—यदि कुछ हुआ, या किसी अपराधीको पकळना, या ले जाना हुआ, तो उस वक्त उन्हींको करना पळता है। वस्तुतः उन्हें पुलिस न कहना चाहिये। इनके लिए प्रयुक्त होनेवाला 'सेवक' शब्द ही ठीक है; क्योंकि ये अत्यन्त विनीत और सेवामें तत्पर होते हैं। रेलोंमें चढ़नेके लिए टिकटकी आवश्यकता न होनेसे 'टिकट बाबू' और 'टिकट-कलक्टरों'की तो आवश्यकता ही न रही। सब जगह सन्देश तारवाले टेली-फोन या बेतारवाले टेलीफोन-द्वारा भेजा जाता है। इसलिए 'ट्र-टक'वाले बाबूका भी काम नहीं। समयपर लाइन साफ रखने तथा और प्रबन्ध करनेके लिए अन्य कर्मचारी होते हैं। किन्तु 'खलासी', 'पैटमैन' और स्टेशन-मास्टर सब बराबर ही हैं—बल्कि सब एक दूसरेका काम भी कर सकते हैं। कारबार के लिए यह कहनेकी तो आवश्यकता नहीं कि सब कुछ 'भारती'-भाषा ही

में होता है। फलोंकी चालानका एक केन्द्र होनेसे, यहाँ चढ़ाई-उतराई तथा ढोनेका काम बहुत होता है।

इस मशीन-युगके यौवन-कालमें सब काम उन मशीनों ही द्वारा कराये जाते हैं, जिनकी नसोंमें विद्युत्का संचार है। मनुष्य तो सिर्फ हुक्म देता है। सवारी-गाळीके खळे होनेके 'प्लेट-फार्म'से कुछ दूरपर मालगोदाम है, जिसके पास ही पीछेकी ओर बर्फका कारखाना है। प्लेटफार्म बहुत सुन्दर, चिकना तथा आस-पास फूलोंसे सज्जित है।

स्टेशन-मास्टरसे भी परिचय हुआ। गाळीके आते ही हमलोग सवार हुए। न मेरे पास कोई बिस्तरा था, न विश्वामित्रके पास। और भी कितने ही आदमियोंको सवार होते देखा, किन्तु मानों सबने कुछ न ले चलनेकी कसम खा ली थी। सब लोगोंके पास उतने ही कपळे थे, जो उनके बदनपर—न बिछौना, न ओढ़ना, न तकिया, न ट्रंक, न लोटा-गिलास-थाली-तसला, न हुक्का-चिलम, न तम्बाकू। और बातमें तो साहेबी थी भी, किन्तु जिस प्रकार रेलके इंजनने फक-फक धुआँ फेंकना छोळ दिया था, वैसे ही आजके 'जेंटलमैनों'ने भी शायद इसी लज्जासे कि जिसे निर्जीवने त्याग दिया उसे सजीव होकर हम क्यों न त्यागें, सोच सिगार-सिगरेट छोळ दिया है।

सचमुच 'सलाई-टिकिया-दियासलाई', 'चाह गरम', 'कबाब रोटी', 'दाँतकी मिस्सी', 'सोडा-वाटर-बर्फ' आदि कोई भी पूर्व-परिचित शब्द मेरे कानोंमें न आये। गाळी क्या थी, छोटे-छोटे खिळकी-जँगलोंवाले जग-मगाते मकान थे। फर्स्ट, सेकेण्ड, थर्ड क्लासका पता नहीं। बस, एक ही

तरहकी गाळी, एक ही तरहका विछौना—चाहे इसे 'फर्स्ट क्लास' कहिए, या 'थर्ड'। चढ़नेके लिए द्वार दूर-दूरपर थे। हमलोग इंजनके पासहीके डब्बेमें चढ़ गये। अब गाळीमें देर न होनेसे प्रियम्वदा, इस्माइल, देवमित्र तथा मोहनपुरके सभ्य-जन विदा हुए। इंजन चलानेवाले महाशयको मेरे चढ़नेकी खबर हो गई थी। उन्होंने घंटी दे, गाळी छोळ दी। मैं गाळीमें खळा हो गया। देखता हूँ, गाळीके एक ओरसे रास्ता गया है, और उसकी दूसरी ओर सोने लायक बेंचें हैं, जिनपर मुलायम गद्दे लगे हैं। मैंने विश्वामित्रसे कहा—पहले बुड्ढेको तुम्हारी नई दुनियाकी गाळी देख लेने दो। हम लोग इंजनके पाससे चले। जिस गाळीमें जाते, वहीं स्वागत होता। स्त्री-पुरुष सब अपनी-अपनी बेंचोंपर बैठे थे। कोई पुस्तक पढ़ रहा था; कोई आजका ताजा समाचार-पत्र। समाचार-पत्रोंकी धूम अब भी कम नहीं। किन्तु 'बंक' और 'कम्पनियों'का इश्तिहार नहीं। अफसोस, अब 'जो चाहो सो पूछ लो', 'त्रिकाल-दर्शी आईना', 'असली मुमीरा', 'फायदा न करे तो दाम वापस', 'घर बैठे एक हजार रुपया महीना कमा लो', 'मुफ्त! मुफ्त! मुफ्त' इत्यादि शब्दावलियोंका पता नहीं। अखबारवालोंकी बळी-बळी व्यर्थकी सुर्खियाँ भी नहीं। न 'खास सम्वाददाता' अथवा 'रूटर-द्वारा'का पता है। महत्त्व-पूर्ण समाचारोंपर सुर्खियाँ अवश्य हैं, किन्तु अब बाहरी तळक-भळक दिखलाकर ग्राहक-संख्या तो बढ़ानी नहीं है। पत्रोंके कलेवर भी भारी ओढ़ने-पहिनने लायक नहीं। विचारणीय विषय मासिक-पत्रोंमें आते हैं। दैनिक-पत्र केवल संसारके दैनिक समाचारोंका संक्षेपमें संग्रह करते हैं। यह प्रत्येक प्रान्तके मुख्य स्थानसे उसीके नामसे निकलते हैं।

शायद यह कहनेकी आवश्यकता न होगी कि वह आवश्यकता अनुसार स्थान-स्थानपर उतनी संख्यामें भेजे जाते हैं, जिसमें कि प्रत्येक नर-नारी आसानीसे पढ़ सकें। काम हो जानेपर, कागजके कारखानोंमें जाकर ये पुराने अखबार सादे कागज बन जाते हैं, और फिर दूसरी बार अपने कलेवरको काला करानेको तैयार हो जाते हैं।

मासिक पत्र वळी तळक-भळकसे, आवश्यकतानुसार चित्रोंसे सुसज्जित होते हैं। फोटोग्राफीका भी अब यौवन है। इतना ही नहीं कि इससे आकृतिके साथ जैसे-का-तैसा रंग ही उतरता है, बल्कि अब चित्र भी एक सेकण्डमें बेतार-के-तार-द्वारा पृथ्वीके दूसरे छोर पर ज्यों-के-त्यों उतर कर समाचार-पत्रोंमें आ जाते हैं। मैं जिस दिन सेव-ग्रामके बागमें आया, उसी दिन मेरा चित्र संसारके समाचार-पत्रोंमें मुद्रित हो गया। प्रत्येक विज्ञानके पृथक्-पृथक् मासिक पत्र निकलते हैं।

हम लोग अब रेलगाळीके पुस्तकालयमें पहुँच गये थे। यहाँ पत्रों और पत्रिकाओंका ढेर पळा हुआ था। यद्यपि दो-तीन आलमारियाँ पुस्तकोंकी भी थीं, किन्तु पत्र-पत्रिकायें ही अधिक। ज्योतिष, गणित, अध्यात्म, इतिहास, भाषा-विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, साहित्य, विद्युत, कृषि, आयुर्वेद, वनस्पति, प्राणि आदि सैकळों विज्ञानोंकी पृथ्वीके भिन्न-भिन्न छोरसे निकलनेवाली पत्रिकायें वहाँ मौजूद थीं। नर-नारी कहीं किसी दार्शनिक तत्त्व पर आलोचना कर रहे थे; कहीं नवीन समाचारको लेकर आनन्द या शोक प्रगट कर रहे थे; कहीं साहित्य-सिन्धुमें गोते लगा रहे थे, तो कहीं उपन्यास ही पढ़-सुन रहे थे; और कहीं संगीत-मंडली जमी

हुई थी। पुस्तकालयकी गाळीके वाद भोजनालय है। यात्रियोंको घरकी तरह यहाँ वना-वनाया भोजन मिलता है। भोजनका समय वही यात्राम भी है। घंटा वजते ही लोग तैयार होकर बेंचों पर बैठ जाते हैं। भोजनालयसे लकळीके तख्ते पर भोजनकी सामाग्रियाँ परोसी हुई विजलीके द्वारा सरकती हुई वहाँ पहुँच जाती हैं। भोजन खानेके वाद सव तख्ते विजली-द्वारा ही लौटा लिये जाते हैं। पानी पीने तथा नहानेके नल जगह-जगह लगे हुए हैं। पायखानोंका प्रवन्ध गाळीके अन्तमें है। ये भी वळे साफ हैं; किन्तु पहलेकी रेलोंकी तरह जहाँ-तहाँ पायखाना गिर नहीं पळता, उसके जमा होनेका स्थान है और खास स्टेशनों पर पायखानोंके नलोंमें गिरा दिया जाता है। शोधक तो जल-देवता हैं ही।

भोजनालयके कमरेको पारकर, हमलोग आगे चले, कई लोग वैठनेका आग्रह करते थे। किन्तु मैं यह कह देता था कि जरा आपके युगकी गाळी तो अच्छी तरह देख लूँ। आगे चलकर एक गाळी वीमारोंकी थी। इसमें पाँच-छः वीमार वळे आरामसे लिटाये गये थे। उनकी सेवामें दयामयी दाइयाँ तत्पर थीं। कोई किसीको पुस्तक पढ़कर सुनाती थी; कोई वातचीतसे मन-वहलाव करती थी। पासकी मेज पर गर्म रखनेवाले वर्तनोंमें दूध, और निकट ही सेव, अंगूर आदि ताजे-ताजे फल अच्छी तरह सजाकर रखे हुए थे। इन रोगियोंमेंसे दो तिव्वतसे आ रहे थे। चिर-रोगी होनेसे उनकी विशेप चिकित्साके लिए तक्षशिला ले जाया जा रहा था। तीन और रोगी नेपाल प्रान्तके भिन्न-भिन्न स्थानोंके थे। उन्हें वैद्योंने समुद्र-यात्राकी सम्मति दी थी। चिकित्सा और सुश्रूपाका समुचित प्रवन्ध होनेसे रोगीकी

आधी पीळा तो ऐसे ही भूल जाती है। भला यह आराम पहले जब बळे-बळे धनिकोंके लिए भी दुर्लभ था, तो सामान्य जनोंकी बात ही क्या?

सब गाळियोंकी एक बार सैर करके हमलोग एक स्थान पर आकर बैठे। उस समय मुझे ख्याल आया कि एक यह समय है और एक वह भी समय था .जब संसारमें सबसे कळी मिहनत करनेवालेको ही सबसे अधिक दुःख था। बेचारे परिश्रमी किसान-मजदूर रेलमें भी जब चढ़ते, तो उनके लिए खळे होनेके लिए पर्याप्त स्थान न था। एक-पर-एक लोग भेळोंकी तरह जेठकी कळी गर्मीमें भी कस दिये जाते थे। उस भीळमें कहीं बच्चा दबता रहता था कहीं औरत। कुछ उज्र करने पर कहा जाता था—इतनी भीळमें जाते क्यों हो, दूसरी गाळीमें क्यों नहीं जाते? किन्तु दूसरी गाळी आने तकमें तो किसीका मुकदमा बिगळता था, किसीकी लगन बीतती थी, किसीका बन्धु मरता था और किसीका खर्चा खतम होता था। और यह सब सह भी लें, तब भी कौन जानता है कि अगली गाळी खाली आयेगी, जिसमें टाँग-पसारे सोते जायेंगे। यह बैठने-सोनेका आराम, यह पढ़ने-लिखने-का सुभीता, यह खाने-पीनेकी बेफिक्री पहले कहाँ नसीब थी? पैसेवालोंकी पाकेट भी तो चलते-चलते गायब हो जाती थी।

हमारे पासहीमें एक मध्यमवयस्का महिला बैठी हुई थीं। पूछने पर पता लगा, आप आन्ध्र-विश्वविद्यालयकी आचार्या हैं। आज छः मासके बाद एक बळी यात्रासे लौटी जा रही हैं। आपकी यात्रा समुद्र, आकाश, पृथ्वी तीनों द्वारा हुई है। आप मद्राससे जहाजमें सवार हुईं; वहाँसे लंकामें दो-चार दिन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानोंको देखती हुई जावा और बाली-द्वीपोंको

गईं; फिर आस्ट्रेलिया। मैंने उनसे पूछा, आस्ट्रेलियामें क्या केवल गोरे लोग बसते हैं? उन्होंने कहा, अब कहीं केवल गोरे, या काले, या पीले, या लाल नहीं बसते। सभी जगह सब रंगके लोग बसते हैं। मुझे आपका परिचय है। मैंने 'ल्हासा'में आपका चित्र और वृत्तान्त पढ़ा था। आप बीसवीं शताब्दीकी बात करते हैं। उस समय भारतमें ऊँच-नीच भावोंसे भरी नाना जातियाँ थीं; वैसे ही, दूसरे देशोंमें भी स्वार्थ-पूर्ण वर्ण-भेद, वर्ग-भेद थे। अब उनका कहाँ पता है? हमारे आन्ध्र प्रान्त, तामिल प्रान्त, अथवा केरल प्रान्तमें यदि पहलेकी बातें स्मरण करके पूछें—क्या अब भी तुम्हारे यहाँ 'परिया' हैं, अब भी तुम्हारे यहाँ 'थीया' हैं, अब भी वह 'अय्यर' और 'नम्बूदरीपाद' हैं, जो 'थीयों'की छायासे अपवित्र हो जाते थे?

मैं—तो क्या, आपके कहनेका मतलब यह तो नहीं कि अब यह बातें बिलकुल नष्ट हो गईं?

महिला—नष्ट ही नहीं हो गईं, कबकी भूल भी गईं। अब वह बातें इतिहासके जिज्ञासुओंके लिए पुस्तकोंमें रह गईं हैं। अब आस्ट्रेलिया आदि किसी भी स्थानमें पुराना पक्षपात और दुराग्रह नहीं। सब जगह आगत अतिथिकी वैसी ही पूजा होती है, जैसी अपने देशमें।

मैं—मैं आपको प्रायः हिन्दी अथवा शुद्ध 'भारती' भाषा बोलते देख रहा हूँ। आपके देशकी 'इकळे'-'तिकळे' वाली बोली तो इधरवालोंके लिए कोई अर्थ ही नहीं रखती थी। आपने यह भाषा कब, और कहाँ सीखी?

महिला—प्रत्येक भारतीयकी 'भारती' तो मातृ-भाषा है। मेरी भी यह मातृ-भाषा ही है।

मैं—तब क्या आन्ध्रवालोंकी 'तेलगू' मातृ-भाषा नहीं ?

महिला—यह नहीं कह सकतीहूँ। तेलगू भी लोग जानते हैं। बहुत दिनों तक अर्थात् २०६६ ई० तक, उनका आग्रह था कि हमें तेलगूको मातृ-भाषा तथा सर्व व्यवहारोपयोगी बनाये रखना चाहिये। किन्तु सारे भारतकी उपयोगी राष्ट्रीय भाषा होनेसे 'भारती' तो पढ़नी ही पळती थी, नहीं तो मनुष्यको कूप-मंडूक बन जाना पळता। लोगोंने इस दोहरे परिश्रमके लिए सबका बहुत-सा समय बरबाद करना उचित न समझा। उधर जब सार्वभौम राष्ट्र होनेसे पूर्व ही एशियावालोंने एक राष्ट्र बनाकर सार्वभौमीको अपनी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनाई, तो लोगों पर और प्रभाव पळा। अब 'भारती'के साथ सार्वभौमीका भी जानना प्रत्येक नागरिक-को अनिवार्य हो गया। इसलिए 'भारती' ही मातृ-भाषा हो गई। यह केवल वहीं नहीं, 'तामिल', 'केरल', 'कर्नाटक'में भी।

मैं—तो क्या आपने अपनी प्राचीन मातृ-भाषाओंकी चिताओंपर 'भारती'का महल उठाया है ?

महिला—भाषा तो अस्थिर होती है। कौन भाषा है, जो दो सौ वर्ष तक एक रूपमें रह गई ? हमारे पळोसमें ही 'तमिलनाड' है। पहले वहाँ ८–१० शताब्दियोंसे भी पूर्व जो भाषा थी, वह आपकी बीसवीं शताब्दीकी 'तमिल'से पृथक् 'शन्तमिल्' कही जाती थी। उस समयके लोगोंके लिए बिना पूरा श्रम और समय लगाये उसका समझना असम्भव था।

मैं—तो आपकी रायमें भाषा और उसके साहित्यकी रक्षाका प्रयत्न ही निरर्थक है ?

महिला—नहीं, मैं यह नहीं कहती। भाषाकी भी यथावसर रक्षा होनी चाहिये। साहित्यको तो अक्षुण्ण रखना चाहिये। किन्तु केवल भाषाकी रक्षाके लिए मनुष्य जातिकी एकताका बलिदान नहीं किया जा सकता। उसकी रक्षाका काम जातिके कुछ आदमी कर सकते हैं। जिनकी भाषा-विज्ञान, इतिहास अथवा विशेष साहित्यकी ओर स्वाभाविक रुचि हो; यह भार उनके ऊपर निश्चिन्तता-पूर्वक छोळ देना चाहिये। संसारका उपकार अनेक भाषाओंको सुदृढ़ करनेमें नहीं है, बल्कि सबके आधिपत्यको उठाकर एकके स्वीकार करनेमें है। जैसे अन्य हितके कामोंमें मनुष्योंका पूर्वका पक्षपात बाधक होता था, वैसे ही यह भी एक प्राचीन निरर्थक पक्षपात था। यह भ्रमपूर्ण पक्षपात ही तो था, जो भारत बीसवीं शताब्दीमें नाना जातियोंमें विभक्त हो आपसहीमें कट-मर रहा था। यह वही अन्धविश्वास था, जिसके कारण इंग्लैण्ड 'दशमलव' तथा 'मात्रिक' परिमाणोंको फ्रांसका समझ कर, उसे अधिक उपयोगी और शुद्ध होने पर भी कबूल न करता था। अब उस पक्षपातका संसारमें स्थान नहीं। अब संसारके सभी स्थानोंमें अर्थ-शास्त्रीय दृष्टि एक है। एक समय था कि भारतमें ही हिन्दी-उर्दूका झगळा था। समय आया कि वह झगळा मिट गया और दोनोंकी प्रतिनिधि 'भारती' भाषा भारतकी राष्ट्रीय भाषा हुई। फिर बळी मुश्किलसे सारे प्रान्तोंने देवनागरी वर्णमालाका प्रान्तीय भाषाओंकी वर्णमाला होना स्वीकार किया। अन्तमें तो अब सबने 'भारती' भाषाको ही मातृ-भाषा बना लिया। पुरानी भाषा अब भी पढ़ी जाती है। अब भी उसके साहित्यका रस लिया जाता है, किन्तु उस संकीर्णताके साथ नहीं।

सभी तो साहित्य-सेवी नहीं होते। जिनकी रुचि होती है, उनके पढ़नेका पूर्ण प्रवन्ध है। इस समय कितनी आसानी है? मुझे सार्वभौमी भाषाके द्वारा आस्ट्रेलिया, सम्पूर्ण एशियामें घर-सा ही मालूम पळा।

मैंने उक्त विदुषीके इन भावोंको वळे ध्यान-पूर्वक सुना। पूछने पर मालूम हुआ कि आपका नाम गार्गी है। मैंने यात्राके वारेमें पूछा तो पता लगा कि आप आस्ट्रेलियामें कुछ दिन रहकर 'वोर्नियो'होती हुई 'निप्पोन्'(जापान) गई। मैंने वीचमें यह भी पूछा था कि आस्ट्रेलियामें आवादी कितनी है। उन्होंने वताया, १६ करोळ। चीन, भारतवर्ष और जापानकी घनी आवादी-वाले देशोंके वहुतसे लोग वहाँ जा-जाकर वस गये हैं। पहलेके इंग्लैण्ड, आदि देशोंके वसे हुए भी लोग हैं, किन्तु उनकी संख्या इतनी आवादीमें वहुत कम है। यह भेद भी ऐतिहासिकोंके महत्त्वका है। वहाँवालोंके लिए तो कोई भेद ही नहीं। मैंने पूछा—'फूजीयामा'को भी निप्पोन्में देखा? वहाँ १९२३ के चन्द घंटोंके भूकम्पने सात लाखकी वलि ले ली थी? उत्तरमें उन्होंने 'हाँ' कहा। पीछे वह नानकिन चली आई। फिर पेइपिंगसे मंचूरियाके कई स्थानोंमें घूमती आप साइवेरिया पहुँची। वहाँसे उत्तरी ध्रुवका दर्शन करती हुई साइवेरिया मंगोलिया, और तिव्वत होती अव अपने विद्यालयको लौट रही हैं। ज्योतिष-शास्त्र और भूगोलसे आपका वळा प्रेम है। इन्हीं दोनोंके सम्बन्धमें आपने यह वळी यात्रा की है। हाँ, साथमें आपके दो और अध्यापक रहे, जिनमें एक 'विश्वभारती'के प्रोफेसर हक और दूसरे अलीगढ़ विश्व-विद्यालयके प्रोफेसर विश्वनाथ। वह दोनों सज्जन भी सामनेकी वेंचों पर वैठे थे। पहले उन्होंने भी अभिवादन किया

था, किन्तु मुझे कुछ मालूम न हुआ था। बात यह है, वस्त्र तो अब सबके एकसे होते हैं, जब तक विशेष वार्तालाप न हो, अथवा कोई परिचय न कराये, तब तक कैसे जाना जा सकता है कि कौन किस योग्यताका है?

आज-कलके जेल भी दूसरे ही प्रकारके हैं। बीसवीं शताब्दीके जेलोंसे इनका मुकाबिला क्या? क्या यहाँके कैदियोंकी जरा-जरा-सी बातमें गाली और जूतोंसे पूजा होती है? ऐसी बात सुनकर तो आजके लोग पहलोंकी बुद्धिपर अफसोस करेंगे। आजकल तो कहा जाता है, अपराध भी मनुष्य किसी मानसिक रोगके कारण करता है; उसकी चिकित्सा होनी चाहिये— उसको शिक्षा देकर सुधरनेका अवसर देना चाहिये। भला वह लोग क्या शिक्षा देंगे, जिन्हें कैदी अपने ही जैसा चोर-डाकू जानते हैं? इसीलिए आज-कलके जेलर होते हैं अत्यन्त नम्र, मानस-शास्त्र और आयुर्वेदके पारंगत विद्वान्। कितने ही अपराधियोंके लिये शल्य-चिकित्साकी भी आवश्यकता पळ जाती है। रोगीको जिस प्रकार सावधानी और शान्तिसे रखा जाता है, वैसे ही अपराधीको। दंड केवल इतना ही समझिये कि उसकी पूर्ववत् स्वच्छन्दता नहीं रहती। भोजन वैसा ही सुन्दर, वस्त्र वैसा ही बढ़िया, मकान-शिक्षा आदिका प्रबन्ध भी अत्युत्कृष्ट। वहाँ ऐसे शिक्षक-जेलरकी शिक्षामें रहकर वह सुधर जाता है। पीछे फिर अपने कार्यपर जाता है। जैसे आजकल रोगियोंकी संख्या अत्यन्त अल्प है, अपराधियोंकी संख्या तो उससे भी अल्प है। बात यह है कि धनी-गरीब तो कोई है नहीं, जो वस्तु, भोजन, वस्त्र और गृह-सामग्री एकके पास है वही दूसरेके पास भी है। जब पर्याप्त तथा वैसे ही सुंदर कोट-कमीज मेरे पास

हों, जैसे कि दूसरोंके पास, तो मैं क्यों चुराऊँगा ? पेट-भर खानेके लिए सभी स्वादिष्ट पदार्थ मुझे, मेरी स्त्री, मेरी लळकी और मेरे लळकोंको बिना चोरी या दगाबाजीके मिलते हैं, तो मैं वैसा क्यों करने जाऊँगा ? कोई चीज चुराकर बेचूँ, तो पहले दुनियामें न खरीदार ही हैं; न रुपया। रुपया लेकर भी क्या करना है ? बुढ़ापेके लिए ? सो तो राष्ट्रकी ओरसे वृद्धोंके लिए परिचारक तथा सब प्रकारके आरामका वैसा ही प्रबन्ध है, जैसा रोगियोंके लिए। फिर रुपयोंकी आवश्यकता ? बेटों-बेटियोंके लिए ? यह भी नहीं। तीन वर्ष तक राजकुमारोंकी तरह उनके पाले जानेका वर्णन हो चुका है। तीनसे बीस वर्ष तक भी उसी प्रकारके आरामके साथ उत्तम-से-उत्तम शिक्षासे भूषित होनेका प्रबन्ध राष्ट्रकी ओरसे है ही। शिक्षा-समाप्तिके बाद योग्य विदुषी कन्यासे इच्छानुसार ब्याह, बिना बारात, जेवर, दहेज आदिके झगळोंके हो जाता है। तब रुपयेसे मतलब !

इस प्रकार चोरी तो आजकलके शासनमें असम्भव है। जमींदारी, काश्तकारी, माल-मिल्कियत किसीकी है ही नहीं, सभी राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। फिर दीवानी-अदालतोंका खात्मा ही है, साथ ही जमीनके दखल-बेदखल आदिके झगळे, मार-पीट, खून-खराबीका होना भी बन्द है। आबकारीका कानून, फैक्टरीका कानून, सिक्कोंका कानून, स्टाम्पका कानून, हथियारोंका कानून इत्यादि हजारों कानूनोंकी जळें ही कट गई हैं। इनमेंसे बहुत-सी चीजोंका संसारसे ही नाम उठ चुका है। अब अपराध यह हो सकता है कि बातके लिए कहीं तकरार होकर झगळा हो जाय।

स्त्री-पुरुष दोनों स्वतंत्र हैं। दोनोंका पति-पत्नी-बंधन प्रेमका है।

पतिका पत्नी पर उतना ही अधिकार है, जितना कि पत्नीका पति पर। वह पुरुष होनेसे उसपर कोई विशेष अधिकार नहीं रखता। व्याह भी दोनोंके युवा होनेपर, सुशिक्षित तथा सुचतुर होनेपर, दोनोंकी पूर्ण स्वीकृतिपर, विना किसी दबाव और विना किसी धनादिके प्रलोभनके होता है। ऐसी अवस्थामें दोनोंका प्रेम स्थायी होना ही स्वाभाविक है। किन्तु यदि निर्वाह न हो सके—किसी कारणसे अथवा पहले जल्दी करनेसे भूल हुई—तो अब भी दोनों स्वतंत्र हैं। दोनोंके रास्ते खुले हैं। दोनों व्याह-सम्बन्ध-विच्छेद करके अपना-अपना रास्ता ले सकते हैं। उनके वैसा करनेमें समाजकी ओरसे कोई बाधा नहीं।

इतना होने पर भी यदि बदचलनीसे कहीं झगळा, फसाद या मार-पीटका मौका आ जाय, तो इससे भी जेलके लिए कैदी मिलते हैं। अनिवार्य तथा बहुत ताकीद करने पर राष्ट्रीय नियमोंको न पालन करनेपर भी मनुष्य जेल भेजा जा सकता है। संक्षेपमें अपराधी होनेके यही तीन-चार कारण हैं।

इनके देखने तथा बीसवीं शताब्दीके अपराधोंसे मिलानेहीसे ज्ञात होगा कि कैदी कितने रह जायेंगे। मालूम हुआ, नैपाल प्रदेश भरमें एक ही जेल है, जिसमें कुल ५० कैदी हैं। बिहारमें भी एक ही जेल है, जिसके कैदियोंकी संख्या कभी सौसे ज्यादा नहीं हुई। ऐसी बात भारतहीके प्रान्तों-में नहीं, दूसरे देशोंमें भी है। पुराने जमानेमें चोरीके लिए बळे-बळे दण्ड मुकर्रर किये गये थे, जिसका कि अस्तित्व ही शासन-प्रणालीके दोष पर [illegible]र था। दूसरोंके परिश्रमकी कमाईको कानूनकी भूल-भुलैयामें डाल

कर हळप जानेवाले तो महाजन, महापुरुष; और रात-दिन खून-पसीनेको एक कर अपने और अपनी सन्तानका पेट न भरनेसे लाचार होकर, उसी पराये मालके हळपनेवालेकी लूटकी ढेरीसे अपनी प्राण-रक्षा भरके लिए थोळा ले लेना वहुत भारी अपराध समझा जाता था। बात यह है कि उस समयकी धारणा ही दूसरी थी। दो-चार आदमियोंको लेकर दूसरेका धन हरनेवाले चोर, सौ-पचास लेकर दिन दहाळे लूटनेवाले डाकू, दस हजार लेकर दूसरोंकी जन्मभूमि छीन लेनेवाले विजयी—दिग्विजयी—कहलाते थे। सिकन्दर और एक डाकूमें तात्विक दृष्टिसे तो कोई भेद नहीं; केवल परिमाणका भेद था। परिमाणके भेदसे तो कुछ और ही होना चाहिये था, क्योंकि थोळे पापवाला थोळा पापी, वळे पापवाला वळा पापी होता है। इस तरह तो सिकन्दर आदि वळे चोरोंकी वळी निन्दा होनी चाहिये थी, किन्तु वह दुनिया ही दूसरी थी। चोर कौन कहे, उलटे लोग उन्हें प्रतापी, महाप्रतापी, दिग्विजयी, विश्वविजयी कहने लगे। सारांश यह कि उस समयके अनेक अपराध कृत्रिम तथा वलात्कारसे कराये जाते थे।

हमारी गाळी दनादन चली जाती थी। कहीं चढ़ाई और कहीं उतराई, तो कहीं पहाळकी सुरंगमें होकर रास्ता था। अभी आस-पासके पहाळों पर अनेक प्रकारके फलोंका ही वागीचा था। आखिर कुछ घंटों चलनेके वाद हमारी गाळीने पहाळ छोळा। अव घने जंगलोंका रास्ता था। पुराने-पुराने शालके ऊँचे और मोटे वृक्ष थे। बीच-बीचमें और भी वळे-वळे दरख्त थे। मुझे मालूम था ही कि इस तराईमें वाघ और हाथी कई तरहके जानवर होते थे। मैंने उनके वारेमें पूछा। मुझे वतलाया गया कि इन जंगलोंमें उन

हिंसक जीवोंका नाम नहीं। सारे हिंसक जीव मार डाले गये हैं। उनके मूलकी रक्षा प्राणि-संग्रहालयोंमेंकी जाती है; जो दो-चार नर और मादा रखे गये हैं, उनके खानेके लिए नकली मांसके टुकळे दिये जाते हैं, जिन्हें वह पहिचान नहीं सकते। हाथियोंको भी फँसा-फँसा कर जंगल खाली कर दिया गया है। उनका भी जाति-उन्मूलन-क्रियासे प्रायः विनाश-सा ही कर दिया गया है। अब केवल प्रदर्शनी तथा विद्याके उपयोगके लिए कुछ रखे गये हैं। अब यह जंगल निष्कंटक हो गया है।

अभी दो-तीन कोस गये होंगे कि एक स्टेशन आया। यहाँका माल-गोदाम बहुत भारी तथा यहाँसे दो लाइनें जंगलोंकी ओर गई थीं। उनके बारेमें पूछनेपर मालूम हुआ कि ये लाइनें दूर तक गई हैं। यहाँसे पूर्व, थोळी दूरपर, एक बळा भारी ग्राम है, जिसका नाम कागज-ग्राम है; जिसमें दस हजार लोग बसते हैं। बस्तियोंका ढंग दूसरे ग्रामोंका सा ही है। वहाँके निवासियोंको भी किसी प्रकारकी सुख-सामग्रीसे वंचित होना नहीं पळता। कागज-ग्राममें कागजका बळा भारी कारखाना है। लकळियोंके काटने, टुकळे करने, उठाकर कारखाने तक लाने, चीरने-फाळने, पकाने-गलाने, 'पल्प' तैयार करने, कागज बनाने, काटने, तह लगाने, आदि सभी कामोंके लिए बिजली-द्वारा चलाई जानेवाली मशीनोंका प्रयोग किया जाता है। यहाँसे कागज तैयार होकर छापाखानोंमें जाते हैं। रद्दी कागज, सळे-गले कपळों आदिसे भरे रेलके डब्बे मैंने स्टेशनपर खळे देखे जिनके बारेमें मालूम हुआ कि यह सब कागज बनानेके लिए जा रहे हैं। पता लगा कि कागज बनानेके सभी उपकरण, बाँस, घास, लकळी आदि यहाँ प्रचुर

परिमाणमें हैं। अतः यहाँ इसका कारखाना खोला गया है। वहाँसे आगे लकळीके भी कारखानोंवाले ग्राम हैं। जिनमें मशीनों-द्वारा लकळीके तख्तोंको चीरकर चौखट, किवाळ, चौकी, तिपाई आदि सभी काठके सामान बनाये जाते हैं।

अब हमारी गाळी और आगे चली। मैंने मन-ही-मन विचार किया, अब थोळी देरमें जंगलसे पार हो जायँगे। किन्तु इतनी देर होने पर भी देखा, अभी तक गाळी जंगलहीमें जा रही है। अब जंगलमें ज्यादा वृक्ष 'सागौन'के थे। मैंने पूछा, ऐसी लकळियाँ तो इधर नहीं देखी थीं। विश्वा-मित्रने कहा—यह लकळियाँ ही नहीं, पहले यहाँ खेत और गाँव बसे थे। यह सौ वर्षसे कुछ ऊपरकी बात है जब यहाँ 'सागौन'का जंगल लगाया गया, अब तो इनसे लकळीकी चीजें बनानेवाले यहाँ कई ग्राम हैं। इस तराईके लकळी और कागजके कारखानोंके बने लकळी और कागजसे आधे भारतवर्षका काम चलता है। इस जंगलसे वृष्टि होने और आगेके पहाळोंमें तरावट आनेमें भी मदद पहुँची है। तराईके सागौन और शालकी लकळी बळी दृढ़ और सुन्दर होती है।

गाळी बीचमें दो-दो, तीन-तीन मिनट रुकती दनादन चली जा रही है। जहाँ-तहाँ स्त्री-पुरुष मेरे आनेका समाचार सुनकर देखनेके लिए स्टेशनोंपर आये हुए हैं। उतरनेका तो कोई काम नहीं। खिळकीपर बैठा ही हुआ हूँ, सफेद बळी-बळी दाढ़ी खुद ही परिचय करा देती है। गाळी रुकते समय थोळी देरके लिये हमारी बात कट जाती है; नहीं तो बराबर गाळीकी तरह वह भी चलती ही जाती है। अब हम लोग जंगलोंके बाहर

चले आये। अब सळककी दोनों ओर हरी-हरी घासोंका मैदान है। मैंने पूछा—क्या जेठ मासमें भी अभी घासें हरी हैं। क्या तुम लोगोंने और चीजों-की भाँति बादलोंको भी तो अपने काबूमें नहीं कर लिया ? अध्यापक हकने कहा, हाँ; अब वृष्टि कराना भी हमारे हाथमें हो गया है; आवश्यकता पळने पर विज्ञान-द्वारा वृष्टि कराई जाती है। किन्तु, यहाँ तो समय-समय पर हरी घासोंको जगह-जगह फैले हुए नलोंके जलको खोलकर सींच दिया जाता है। वृष्टि ऊँचे, सूखे पर्वतोंको हरा करनेके लिए कराई जाती है। नहीं देख रहे हैं, भूमि कैसी समतल, पानीके तलके बराबर है ? मैंने पूछा, बरसातका पानी भूमिको काट-काटकर ऊभळ-खाभळ नहीं बना देता ? इसपर उन्होंने कहा, पानीकी चलती तो वह ऐसा करनेमें कब चूकता, किन्तु अब उसका रास्ता निर्दिष्ट है। कितना ही पानी बरसे, उन पक्के रास्तों अथवा नलों-द्वारा बळे नालोंमें होकर नदीमें पहुँचा दिया जाता है। रेलकी सळकको नहीं देख रहे हैं, कदम-कदमपर लोहेके पुल बँधे हुए हैं। जलके रास्तेपर कहीं जबर्दस्ती नहीं है।

अब गायोंके झुण्ड चारों ओर बिखरे हुए बळे सुन्दर दिखाई देने लगे। अब तक तो सळकके किनारे तार नहीं गळे थे, किन्तु अब तो तार भी बराबर गळे हुए थे, जिसमें गायें चलती गाळीके आगे न आ जायें। बहुत ही सुन्दर और बळी-बळी गायें थीं। जिनकी सूरत देखते रहनेको तबियत चाहती थी। गायोंसे बछळे अलग करके दूर चराये जा रहे थे। हरी-हरी घासोंको बळे प्रेमसे गायें चर रही थीं। मैंने कहा, अब दाना-खलीकी इन्हें क्या आवश्यकता ? इसपर अध्यापक विश्वनाथने कहा—

तब भी खली, मक्काका दाना, कण, और चोकर इन्हें दिया जाता है। सायं-कालको थानपर जाते ही इनको यह स्वादिष्ट व्यारू कराया जाता है। मैंने जगह-जगह देखा कि लम्बे-लम्बे पक्के हौजोंमें साफ पानी लबालब भरा हुआ है। पानी इनमें बराबर आता और निकलता रहता है। यहाँ गायें आकर पानी पीती हैं; जगह-जगह हरे-हरे वृक्षोंकी छाया है। कुछ गायें वहाँ भी बैठी जुगाली कर रही हैं। गायोंके झुंडमें कई भीमकाय साँळ भी दिखाई दिये। इनमें कुछ चर रहे हैं, और कुछ 'अव्-भाँ' कर रहे हैं। साँळोंके देखते ही मुझे एक बात स्मरण आगई और मैंने अध्यापक हकसे पूछा, आप लोग खेत तो बिजलीके हलोंसे जोतते हैं; और गाळी भी बिजलीहीसे चलाते हैं; बैलोंके खानेवाले भी नहीं। साँळ रखनेको सौपर दो-तीन बैलोंकी आवश्यकता पळती होगी, फिर इतने बछळे, जो पैदा होते होंगे, किस काममें आते हैं?

हक—कितने बछळे? हमलोग पैदा ही इतने बछळे होने देते हैं, जितने साँळोंकी आवश्यकता है। बाकी बछियाँ ही पैदा कराई जाती हैं।

मैं—तो क्या अब आपने यह विद्या भी पा ली है?

हक—हाँ, जो-जो आवश्यकता और कठिनाई मार्गमें आती गई, हमने परिश्रम किया और उसका हल भी मिल गया।

मैंने हँसते हुए कहा—भाई! तुमने सब बातोंमें कमाल किया। सब कठिनाइयोंको सहल और असम्भवोंको सम्भव बना दिया। तुम शायद एक भी असम्भव बात न जानते होगे। यही गायें हैं, जिनको लेकर २०वीं और उससे पूर्व शताब्दियोंके हिन्दू-मुसलमान प्रलय तक एक दूसरेके खूनके प्यासे बन बैठे थे।

हक—वे हमारे पूर्वज चले गये, उनके लिए अब कुछ कहना तो ठीक नहीं, तो भी यह निरा अज्ञान था। दोनों अपनी हमेशाकी भलाईकी ओर नहीं देखते थे। सोना लुटा जा रहा था और कोयलोंपर लट्ठम-लट्ठ करते थे। सचमुच आज-कल जब कभी हमलोग उन पुरानी बातोंको पढ़ते हैं, तो हँसी आये बिना नहीं रहती।

अब मालूम हुआ कि अगला स्टेशन गो-ग्राम है। मैंने गो-ग्रामके विषयमें बहुत कुछ दर्याफ्त किया; जिसका सारांश यह है। इस ग्राममें पाँच हजार आदमियोंकी बस्ती है। असलमें आदमियोंकी बस्तीको तो गो-ग्राम न कहकर गोपाल-ग्राम कहना अच्छा होगा। क्योंकि गाँवमें तो एक भी गाय नहीं रहती। गाँव स्टेशनसे लगा हुआ है। गायोंका गोष्ठ वहाँसे एक मीलकी दूरीपर है। चरनेका मैदान तो कई कोसमें है। इस मैदानमें जहाँ-तहाँ घासके ताळ बराबर ऊँचे ढेर लगे हुए हैं। गाय-बच्चे मिलाकर सब एक लाख तक पहुँच जाते हैं। इनमेंसे प्रायः आधी तो दूध देनेवाली गायें ही होती हैं। भला, इतनी गायोंको कौन दुह सकता है? बात यह है कि विज्ञानने जैसे और कठिनाइयोंको सरल कर दिया, वैसे ही इसे भी सरल कर दिया है। गायें पाँतीसे खळी रहती हैं; उनके बीचसे मोटे-मोटे नल गये रहते हैं; और इन नलोंसे निकले छोटे नल गायोंके नीचे जाते हैं; जिनमें लगी रबळकी नलियाँ स्तनोंमें लगा दी जाती हैं। बस, मशीन-द्वारा सभी दूध दूहकर बळे नलों-द्वारा, रेलकी लाइनपर खळी दूधकी गाळियोंके डब्बेमें जाकर गिरता है। डब्बे भरते जाते हैं और जिन-जिन गाँवोंमें उनका खर्च है, वहाँ रवाना होते जाते हैं। यहाँ दूध बिना

हवा देखे ही, डब्बोंमें बन्द हो जाता है। वहाँ भी उसे हवाका साक्षात्कार नहीं होता। बळे वर्तनसे छोटे वर्तनोंमें भी ऐसे ही नलोंके द्वारा उसे ले जाया जाता है। खर्चवाले गाँवोंमें जाकर भी बन्द ही उसको बिजलीकी आँचसे गर्म कर दिया जाता है। पीनेके वक्त ही वह दूध जरा देरके लिए हवाका मुख देखता है। गो-ग्राममें दूध गर्म करने आदिका कोई वखेळा नहीं। यहाँवालोंका काम है गौओंकी हिफाजत करना, उनकी अच्छी सन्तान पैदा करना, दूध निकालना, स्थान-स्थानपर आवश्यकतानुसार भेजना और बस। ब्याई, बिन ब्याई, बच्चे, सबके लिए चरने और रहनेके पृथक्-पृथक् स्थान हैं, जहाँसे विना मर्जीके अपने आप वह इधर-उधर नहीं आ-जा सकते। गाय, भैंस, भेळ, वकरीके गाँवोंमें कुछ घोळे भी पाले जाते हैं। चरवाहे घोळोंपर चढ़कर इच्छानुसार अपने गल्लेपर शासन करते हैं। वीमार, बुड्ढे पशुओंके आराम और चिकित्साका वैसा ही प्रबन्ध है, जैसा कि मनुष्योंके लिए। गाँवके लोग अपनी ड्यूटीके अनुसार आ-आकर काम करते हैं। गो-ग्राम खेतीवाले ग्रामोंको लाखों मन खाद देता है। यह खाद बराबर रेलोंपर लादकर पहुँचाई जाती है।

अगला स्टेशन भैंस-ग्रामका था। चरनेका वही मैदान आगे भी बढ़ता चला आया था। जैसी सुन्दर और विशाल गायें देखी थीं, वैसी ही भैंसे भी दिखाई पळीं। इनके सामने हाँसो-हिसारकी वीसवीं शताब्दीकी भैंसे तुच्छ हैं। काली-काली देह। इनके स्तन बोतलकी भाँति झलकते थे; जिनको देखनेहीसे मालूम होता था कि यदि एक मन नहीं, तो कुछ ही कम दूध देती होंगी। भैंस-ग्रामके विषयमें मालूम हुआ कि यहाँ भी उतनी भैंसें हैं,

जितनी पिछले गो-ग्राममें गायें। हक्का उत्तर सुनकर मैंने फिर न पूछा—साँड़से अधिक भैंसोंका क्या होता है? भैंसोंको पानीमें बैठनेसे बळा प्रेम है; इसके लिए स्थान-स्थानपर चौळे-चौळे कुण्ड बने हुए हैं, जिनमें पानी आता और निकलता रहता है। खाने-पीने, रहने, दवाई-दर्पन सबका प्रबन्ध गो-ग्राम-सा ही है। किन्तु भैंस-ग्राममें दस हजार आदमी बसते हैं, जिनके लिए काम भी विशेष है। बात यह है कि गायोंकी भाँति भैंसोंका दूध नहीं भेजा जाता। भैंसोंका दूध वैद्यकी सम्मतिसे कहीं थोळा-बहुत भेजा जाता है। नहीं तो सब दूध मशीन-द्वारा मथन करके दूहनेके बाद ही, मक्खन निकाल लिया जाता है। यह मक्खन बर्फसे रक्षित गाळीके डब्बोंमें बन्द करके स्थान-स्थान पर भेजा जाता है। आवश्यकताके अनुसार मक्खनसे घी बनाकर भी भेजा जाता है।

"किन्तु; क्या मक्खन निकालकर हजारों मन दूधका अवशिष्ट भाग रोज फेंक दिया जाता है?"

"नहीं, यहाँ बटनोंका बळा भारी कारखाना है। दूधका सफेद घन भाग रासायनिक प्रक्रियासे पृथक् करके उनसे नाना रंग-बिरंगके बटन बनते हैं। बटन ही नहीं, कितने दरवाजों, मशीनों आदिके सफेद हेंडलोंके लिए भी इसका उपयोग होता है, जिसमें आदमीका हाथ छूनेसे काला न हो। एक ओर बिजलीने धूएँको संसारसे बिदा कर दिया, तो दूसरी ओर इधर इसने हाथका काला होना भी बन्द कर दिया है। आज क्या फैक्टरीके आदमीका रंग काला होता है? आर्ट पेपरपर चिकनाई लानेके लिए भी इस दूधकी सफेदीका प्रयोग होता है। अब हाथी-दाँत तो पैदा नहीं होता

किन्तु यह निस्सार दूध उसके कामके साथ और बहुत-से काम भी कर डालता है।"

घासोंके टाल तो मैंने जगह-जगह देखे थे, किन्तु पयाल, भूसाका गंज कहीं न मिला। पूछनेपर मालूम हुआ कि धान और गेहूँ आदिके डंटे भी यद्यपि कल-द्वारा काटे जाते हैं, किन्तु साथ ही बाली थोळे डंटेके साथ काटकर एक ओर रखी जाती है; और डंठलका बोझा अलग बँधता जाता है। यह डंठल और पयाल पीछे गाँठें बाँध-बाँधकर कागजके कारखानोंमें भेज दिये जाते हैं, जहाँ उनसे कागज बनाया जाता है। गाय-भैंसोंके खानेके लिए हरी और सूखी घास ही काफी होती है।

अब साढ़े तीनके तोपकी आवाज पासके किसी गाँवसे आई। हमारी गाळीवाले सभी लोग बेंचोंपर आकर बैठ गये। थोळी देरमें हवामें छतके तारके सहारे तैरता हुआ हमारे जलपानका तख्ता सामने आ गया। इस वक्त भोजन कुछ और ही नियामत थी। एक छोटी तश्तरीमें काली मिर्च लगाकर घीमें तले, नमकीन, हरी मटर तथा हरे चनेके दाने थे। एक-एक गिलास गन्नेका कच्चा रस दूधमें मिला हुआ अलग रक्खा हुआ था। इसके अतिरिक्त कुछ फल भी थे। मालूम हुआ, आज-कलके लोग पुराने गाँवोंकी इन नियामतोंसे भी महरूम नहीं हैं। बताया गया कि ऐसे ही सभी मौसिमकी चीजें बच्चे-बूढ़ों, पुरुष-स्त्रियोंके पास पहुँचा करती हैं। मक्काके दिनोंमें भुट्टे इसी तरह जलपानके समय पहुँच जाते यदि हम उस समय सफर करते। प्रसन्नता-पूर्वक हमारे गाळीके परिवारने जलपान् किया। मेरे मनमें उस समय यह ख्याल आता था कि इसी युगके

बारेमें बीसवीं शताब्दीके हिन्दू कहा करते थे कि आगे घोर कलियुग आयेगा। पृथ्वी नरक हो जायगी। यह तो सभी कुछ स्वर्गके मालूम होते हैं। शायद उस युगके स्वामियोंके लिए समस्त मनुष्य-जातियोंका इस प्रकार आनन्द भोगना नरक प्रतीत होता था।

हाथ-पाँव धोकर, सामने खिड़कीसे देखा, जिनके खेतोंमें कोसों तक चनोंकी हरियाली लहरा रही है। चनोंके सिवाय दूसरी कोई चीज ही नजर नहीं आती। पूछनेसे ज्ञात हुआ, अगला स्टेशन शालिग्राम है। वहाँ सिर्फ धान और चनोंकी खेती होती है। धानोंकी फसल कट जानेपर उन्हीं खेतोंमें चने बो दिये जाते हैं। पचास-पचास बीघोंकी एक-एक क्यारी थी, जिसके चारों ओर छोटी मेंड़ें थीं। बासमती, किशुनभोग, गजकजीरा आदि उत्कृष्टतम धानोंको छोड़कर मोटे धानोंकी तो अब खेती ही एक तरहसे बन्द है। विद्यालयोंमें उनकी मूल-रक्षा तथा परीक्षणके लिए थोड़ा बोया जाता है। बाकी खानेके लिए तो सब अच्छे-ही-अच्छे चावल हैं। यह शालिग्राम भी १० हजार आदमियोंका ग्राम है। यहाँ खेतीके अतिरिक्त चावल अलग करनेका भी कारखाना है। धान-कुटाईका काम भी बस मशीन हीसे। चावल तैयार होते जाते हैं, और स्थान-स्थानपर गाड़ियोंमें भर-भरकर रवाना होते रहते हैं। चनोंकी दाल और बेसन बनाकर तथा साबित भी चालान किया जाता है। पयाल तो कागजके कारखानोंहीमें चला जाता है। हाँ, धानकी भूसी तथा और कूड़े-करकटको गड्ढोंमें डालकर, खाद बनाई जाती है। बाकी खाद गो-ग्राम, भैंस-ग्रामसे आती है। कितने ही पशुओंके ग्रामोंमें हड्डी पीसनेके कारखाने हैं। मुर्दे पशुओंका, पहले खाल

दिया गया है, कोई चमळा नहीं उतारता। उन्हें गाळ दिया जाता है। पीछे सळी मिट्टी तो खादके स्थानपर भेज दी जाती है, और हड्डियाँ कलोंमें पीसकर चूर्ण कर दी जाती हैं। यहाँ उनसे बहुत-सी फास्फोरस भी निकाली जाती है, जिन्हें दियासलाई बनाने आदिके काममें लाया जाता है। यद्यपि सिग्रेटके बन्द होने तथा आगके स्थानपर बिजलीके उपयोग होनेसे दियासलाइयोंका खर्च बहुत कम क्या, नहींके बराबर है; तब भी एकाध कारखाने दियासलाईके रखे गये हैं।

शालिग्रामका खेलका मैदान स्टेशनके पास ही सळकके किनारे था। देखा, सहस्रों स्त्री-पुरुष वहाँ जमा हुए हैं। 'फुटबाल' खेला जा रहा है। बळे-बळे जवान खेलमें लगे हुए हैं। ओह, अभी एक गोल हुआ—सारी दर्शक-मंडलीने प्रसन्नता प्रकट की। आगे इधर कबड्डी जमी हुई है। हरी घासपर नंगे पैर, जँघिया और बनियाइन पहिने खिलाळी खेल रहे हैं। स्थान सळकसे लगा हुआ है, और गाळी भी स्टेशनके पास आनेसे बहुत धीमी पळ गई है; इसलिए इनके पुष्ट, सुन्दर और स्वस्थ शरीर खूब दिखलाई पळ रहे हैं।

रेलोंकी सळकोंके नीचेसे जगह-जगह नहरें जाती दीख पळती हैं। विश्वामित्रने कहा—अब गण्डक, गंगा आदि नदियोंकी धारा उतनी मोटी नहीं मिलेगी, जितनी कि पहले थी। सारे देशमें नहरोंका जाल बिछा हुआ है। इन नदियोंके पानीका बहुत-सा भाग तो ऊपरसे ऊपर ही नहरोंमें ले लिया जाता है। सभी ग्रामोंमें यद्यपि अपने कारखानोंकी भाफके लिए पानीकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु सब कुछ हरा-भरा और साफ रखनेके

लिए उसकी बळी आवश्यकता है। खेती और बगीचेवाले गाँवोंको तो सींचनेकी भी हर वक्त आवश्यकता पळती रहती है। पानी और बिजली यही दोनों आजकलके संसारके प्राण हैं; बल्कि बिजली भी तो पानीहीसे तैयार की जाती है। इसलिए पानी आजकल सब कुछ है। इसका जैसा ही बळा भारी खर्च है, वैसा ही व्यर्थ व्यय भी न होने देनेकी ओर ध्यान है।

जंगल छोळते ही भूमि बराबर आ गई थी। अब पहाळ भी दूर धुँधले बादलोंकी भाँति दीख पळते थे। चारों ओर मैदान-ही-मैदान था। बस्तीके पास ही वृक्ष थे, अन्यथा वृक्षोंका कहीं नाम न था। खेतोंमें खाद ले जाने तथा अनाज ढो लानेके लिए छोटी-छोटी गाळियोंकी पतली-पतली लोहेकी कळियाँ दिखलाई पळती थीं। चनोंमें यद्यपि फल लग गये थे, किन्तु अभी पके न थे—वह बिल्कुल हरे-हरे दिखलाई पळते थे, तोभी कहीं रखवालोंकी झोपळियाँ न दिखाई देती थीं। शालिग्राम स्टेशनसे कोसों आगे तक चनोंके खेत चले आये थे।

अब भूमि ऊँची आई। चनोंकी जगह पर बळी-बळी बालियोंवाले गेहूँके खेत हैं। सळकके दोनों तरफ जहाँ तक दृष्टि जाती है, हरे-हरे गेहूँ ही दिखलाई पळते हैं। हवाके झोंकोंसे हिलते हुए ये प्रशान्त सागरमें हल्की तरंगोंके समान मालूम देते हैं। गेहुँओंके स्वाद और आटेकी सफेदीके बारेमें क्या कहना है? किन्तु मुझे गेहूँके दाने अभी देखनेको न मिले थे। मैंने विश्वामित्रसे पूछा कि क्या हमारे समयके पूसा नं० ३ से भी यह दाने अच्छे होते हैं। उन्होंने कहा—पूसा नं० ३ विद्यालयके संग्रहालयमें रक्खा हुआ है; वह भला इन गेहुओंका क्या मुकाबिला कर सकता है? खेतकी

जुताई, कटाई, दँवाई आदि सभीके बारेमें तो इकट्ठा ही सुन चुका था कि बिजलीकी कलों-द्वारा होती है। एक-एक हलमें बीस-बीस फाल पाँतीसे लगे रहते हैं, जो एक-एक हाथ गहरी भूमि खोदते चलते हैं। पीछेसे लगा पटेला (सिरावन)—ढेलोंको फोळता और भूमिको बराबर करता जाता है। बोनेका काम भी मशीनों ही द्वारा होता है। पकी खेतीका काटना, बाँधना, ढोना, आदि सभी काम कलें ही करती हैं। अच्छी खाद और पर्याप्त जलकी अनुकूलतासे फसल जैसी चाहिये वैसी ही होती है। गेहुओंके खेतोंमें सालमें दो फसलें होती हैं, बरसातमें मक्का और बाजरा बोया जाता है, फिर यह गेहूँ। मक्का और बाजरेको आजकल आदमी केवल भुट्टा और होलहाके तौरपर ही मौसिममें दो-चार दिन खाते हैं; बाकी इन्हें गाय-भैंसोंको दिया जाता है। इनके डंठल भी कागजके कारखानोंमें जाते हैं। हरा होनेपर कुछ पासके किसी पशु-ग्राममें भी स्वाद बदलनेके लिए भेज दिये जाते हैं।

इस गेहूँ-ग्राममें आटा पीसनेका बळा कारखाना है। यद्यपि सभी गेहूँके ग्रामोंमें खेतीके साथ-साथ पिसाई भी होनेका नियम नहीं है। किन्तु नजदीकमें और कोई ऐसा कारखाना न होनेसे इसकी आबादी दस हजार करके यहाँ कारखाना भी रखा गया है। आटा-मैदा सब यहाँसे तैयार होकर चालान होता है।

गेहूँ-ग्रामकी सीमा पार होनेपर आम-लीची आदिके वृक्ष दिखलाई देने लगे। पूछनेपर ज्ञात हुआ, अब हम मोतीहारीके पास आ गये। यह बगीचा एक विद्यालयका है। पहले बतलाया जा चुका है कि तीन वर्षके बाद लळके-लळकियाँ माता-पिता तथा जन्म-स्थानसे अलग करके विद्या-

लयमें भेज दिये जाते हैं। प्रत्येक ३०-४० ग्रामके बीचमें एक ऐसा विद्यालय रहता है, जिसमें दस-पन्द्रह हजार या कभी इससे भी अधिक बालक-बालिका पढ़ते हैं। इनमें प्राय: सब प्रकारकी साधारण शिक्षा देनेका प्रबन्ध होता है। सत्रह वर्ष तक बालक-बालिकायें इन्हींमें पढ़ते हैं। असाधारण प्रतिभाशाली, तथा किसी विद्याकी ओर विशेष प्रवृत्ति रखनेवाले बालक बीचमें भी एक विद्यालयसे दूसरे विद्यालयको—जहाँ उस विद्याका समुचित प्रबन्ध होता है भेज दिये जाते हैं। अध्यापकों या विशेषज्ञोंकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए यहाँसे किसी अन्य विद्यालयमें जाना पळता है, नहीं तो साधारणतया यहींसे शिक्षा समाप्त करके विद्यार्थी कार्यक्षेत्रमें उतरते हैं। सभी विद्यालयोंकी शिक्षा-दीक्षा और रक्षाका ढंग एक-सा ही है। विश्वामित्र जीने विशेष पूछनेपर कहा, यह सब बातें तो नालन्दामें आँखोंके सामने ही आयेंगी।

अब मोतीहारी नगर आया। क्या अब पुराने दर्शक पहिचान सकते हैं? बिल्कुल उलट-पुलट गया है। आबादी तो अब बिल्कुल दस हजार आदमियोंकीही है। किन्तु आजकी स्वच्छता, सुन्दरता और एक-रूपता पहले कहाँ थीं? पहाळ पार करनेके बाद ही हम बिहार प्रान्तमें आ गये थे। मोतिहारी बिहार प्रान्तके 'विदेह' प्रदेशका एक जिला है। प्रान्तोंके नामोंमें इधर बहुत-कुछ परिवर्तन हुआ दीख पळता है। पुराना सारनका जिला इसी प्रान्तमें है। उसके पश्चिम काशी-कोसल प्रान्त लखनऊसे आगे तक चला गया है। उसके बाद कुरु-पाञ्चाल-मत्स्य शूरसेन प्रदेशोंका इसी नाम का एक प्रान्त है। दिल्ली इसी प्रान्तमें है, जोकि अब भी भारतकी राज-

धानी या राष्ट्रधानी है। इस प्रकार प्रान्तों तथा प्रदेशोंकेनाम पुराने रखे गये हैं। पिछली शताब्दियोंके इतिहास-सम्बन्धी स्थानोंके नाम भी ज्यों-के-त्यों रहने दिये गये हैं। यहाँ मोतिहारी नगरमें जिलाकी पंचायतका कार्यालय रहता है। सभापति और कार्यकारिणी के सदस्य अपने निर्वाचन-अवधि भर यहाँ ही रहते हैं। जिलाकी उत्पत्ति तथा आवश्यकताओंके अनुसार चीजें बाहर भेजने तथा मँगाने आदिका काम इनके कर्त्तव्योंमें एक प्रधान कर्त्तव्य है। जिलाके हिसाब-किताब तथा अन्य प्रकारके कागज-पत्रोंके साथ पुराने कागज-पत्रोंका भी यहाँ संरक्षणालय है। इसके और जिला आफिसके अतिरिक्त दूसरे सारे ही मकान बिना कोठेके हैं। गाँवों और शहरोंके घर-द्वार, रहन-सहन, खाना-पीना किसी बातमें भी कुछ भेद नहीं। अब वह पुरानी सळी गलियाँ और गन्दे मकान कहीं नहीं दिखाई पळते। जिलाकी पंचायतकी बैठकका यहाँ एक बृहद् भवन है। नगरवालोंका संस्थागार इससे अलग है। नगरमें एक छापाखाना है। जिला भरके आवश्यक कागज-पत्र यहीं छपते हैं। यहाँ सबसे बळा कारखाना मशीनोंके सुधारने तथा पुरजोंके बदलनेका है।

आगे बढ़नेपर सळकके दोनों ओर दूर तक बाग-ही-बाग दिखलाई देने लगे। मैंने जलपानमें अमरूद और बेरके टुकळे खाये थे। एक-एक बेर एक-एक छटाँकके थे, तिसमें तारीफ यह कि गुठलीका पता नहीं। अमरूदोंमें भी, सारा फल ढूँढ़नेपर कहीं एक बीज मिल पाता था। मिठास और सुगंधके लिए क्या कहना है? विश्वामित्रने बताया, यह फल भी वैसे ही होते हैं। अब घटिया वस्तु पैदा ही नहीं की जाती। यह सारा बाग

वेर-ग्रामका था। इस ग्राममें यही काम होता है। फल बारहों मास होते रहते हैं, अतः लोगोंको काम भी सदा मिलता रहता है। मालूम हुआ कि दूसरी तरफ इस ग्राममें जामुनका भी बाग है। इसमें भी वेरहीकी भाँति जादू किया गया है। अर्थात् आकार वहुत वळा; मिठास-सुवास अनूप; किन्तु गुठलीका पता नहीं।

बागोंके बाद एक बार फिर खेत-ही-खेत दिखलाई देने लगे। कितने ही खेतोंकी फसल तो कट गई थी, किन्तु ऐसे भी खेत थे, जिनमें कोसों फलियोंसे लदी सरसों थी। मालूम हुआ, यह तेलग्राम है। यहाँ इन खेतोंमें पहले तिल्ली उत्पन्न की जाती है, पीछे सरसों वो दी जाती है। यहाँ तेल निकालनेका वळा भारी कारखाना है। खाने तथा सिरमें लगानेका तेल प्रदान करना यहाँवालोंका काम है। मैंने कहा—तब तो चाहे बिजलीहीसे काम क्यों न किया जाता हो, किन्तु तेलसे कपळे तो अवश्य रँगे जाते होंगे। विश्वामित्रने कहा—नहीं, पहले तो काम करनेके वक्तकी पोशाक ही सबकी दूसरी होती है; दूसरे, काम भी दूर-ही-दूरसे करना होता है। सभी काम तो मशीन और नल करते हैं। इन तेलोंके ले जानेवाली बहुत-सी गाळियाँ भी मैंने स्टेशनपर देखीं, जो पुराने समयके मिट्टीके तेलकी गाळियोंसे बहुत मिलती जुलती थीं। मैंने पूछा—सुगंधित तेल तो यहाँ नहीं बनता होगा? इसपर बतलाया गया कि सुगंधित तेलोंके कारखाने गाजीपुर, जौनपुर, कन्नौज आदि नगरोंमें हैं। वहाँ आस-पास कोसों दूर तक इसके लिए फूलोंहीकी खेती होती है। तिल वहाँ दूसरे स्थानोंसे जाता है, जिससे वहाँके लोग तेल तैयार करते हैं। ऐसे ही मालूम हुआ, साबुन तैयार

करनेके ग्राम हैं, जहाँ सावुन-ही-सावुन तैयार किया जाता है।

अगले स्टेशनपर अँचार-ग्राम लिखा दिखाई पळा। मालूम हुआ, यहाँ अँचार और मुरब्बेके सिवाय कोई काम ही नहीं होता। अँचारके लिए फल, तेल; इसी प्रकार मुरब्बोंके लिए अपेक्षित सामग्रियाँ उन-उन चीजोंके ग्रामोंसे आती हैं। यहाँवाले मशीनोंसे फलोंको काट, सुखा-पकाकर, अँचार तैयार करके अपने वळे गोदाममें चीनी मिट्टीके वळे-वळे हौजोंमें रखते हैं। जब खाने लायक हो जाता है तो फिर जगह-जगह उसी प्रकार सावधानी-पूर्वक ले जानेवाली गाळियोंमें भेजा जाता है। यहाँके लोग अँचार बनानेकी विद्यामें वळे पटु हैं। उनको इस विषयकी विशेष शिक्षा मिलती है। कटहल, वळहल, आम, जामुन, आँवला, कदम्ब आदि सब चीजोंका अँचार बनता है। इन वस्तुओंके उत्पन्न करनेवाले अलग-अलग ग्राम हैं। और सभी वस्तुओंके आकार-प्रकार, गुणोंमें विज्ञानने आश्चर्य-ज़नक परिवर्त्तन कर दिया है।

आगे हमें सळकके किनारे दर्जी-ग्रामके अतिरिक्त दाल-ग्राम पळा। दाल-ग्राममें वर्षाकी फसलमें खेतोंमें उळद, मूँग और जाळेमें अरहर पैदा की जाती हैं। इनसे यहाँ दाल बनानेका वळा भारी कारखाना है। वाकी सब ढंग अन्य ग्रामों-सा ही है। इसके वाद कई-एक गाँव मिले, लेकिन सबमें कलमी आमों तथा लीचियोंका वाग ही था। यह वागोंका सिलसिला मुजफ्फरपुर होते गंगाके किनारे तक लगातार चला गया था। फलोंके रूप-गुणमें तो आश्चर्य-जनक परिवर्त्तन हुआ ही है, साथ ही फसल वारहो मास तैयार होती रहती है। कितने ही वागोंके वृक्ष सालमें दो वार फल

देते हैं। लीची और आमके फलोंमें गुठली अब बहुत छोटी-छोटी देखी जाती है; किन्तु, ऐसे भी फल तैयार किये जाते हैं जिनमें गुठली एकदम नहीं होती। सारा बिहार एक तरह आमों और लीचियोंका बाग है। अंग, मगध, विदेह इसके तीनों प्रदेशोंमें सबसे अधिक पैदावार इन्हीं दो फलोंकी है। यह फल यहांसे भारतमें ही नहीं, यूरोप, अमेरिका तथा एशियाके सभी भागोंमें भेजे जाते हैं। बर्फकी गाळियोंमें वह इस प्रकार भेजे जाते हैं कि महीनों रखनेपर भी नहीं बिगळते। आमोंका आमरस भी तैयार किया जाता है; और उसके बनाने और रखनेकी ऐसी क्रिया और प्रबन्ध है कि खानेपर ताजे आमोंका स्वाद आता है।

दाल-ग्रामसे कुछ ही आगे आये थे कि अँधेरा हो गया। फिर मैं कुछ आगेके ग्रामोंकी बात पूछता और सुनता रहा। आठ बजेके भोजनको समाप्तकर थोळी देर और वार्तालाप किया। अब सारी ट्रेन बिजलीके प्रकाशसे जगमगा रही थी। इसके बाद मैं सो गया। चार बजेका समय था, जब हमारी गाळी गंगाका पुल पार करने लगी। हमने कहा अब विदेह छूटता है और मगधमें प्रवेश होता है। यह पटना देवानम्पिय पियदस्सी राजाकी पुरी आई। मैंने एक बार जो अपनी यात्राके अब तकके दृश्यको अपने सामने फिर रखा, तो विचार हुआ, अबके लोग बळे चतुर हैं। पहले का प्रत्येक आदमी चाहता था कि संसारकी सभी वस्तुयें वहीं पैदा कर ले। इस प्रकार एक ही गाँव अपनी आवश्यक सभी सामग्रियोंको पैदा करनेकी कोशिश करता था। अब तो एक गाँवके हजारों आदमी एक ही चीज पैदा करते हैं। दर्जीग्राम कपळा तैयार करनेवाले ग्रामोंसे कपळा लेकर स्त्री-

पुरुष-बच्चोंके लिए, तरह-तरहके नापके वस्त्र तैयार करता और आई हुई माँगोंके अनुसार वहाँ-वहाँ रवाना करता है। उसके कुछ आदमियोंको रसोई बनाना पळता है; किन्तु उसे न अनाज पैदा करनेसे सम्बन्ध; न आटे-चावलके भावसे प्रयोजन; न लाठीसे गाय-भैंस चरानेका काम; न आलू-बैगन-गोभी बोनेसे मतलब; न ऊख पेल कर चीनी-गुळ तैयार करनेका प्रयास; अर्थात् उसके लिए अपेक्षित अन्य सभी वस्तुयें दूसरे ग्राम तैयार करते हैं, जिनके कि कपळोंकी आवश्यकता वह पूरा करता है। इकट्ठा बहुत-सी चीजें कलों-द्वारा तैयार करनेमें श्रम और समय कम लगता है। कहाँ पहले लोगोंके दिन-रात लगे रहने पर वही मसल थी कि यदि सिर ढँका तो पैर नंगा, यदि पैर ढँका तो सिर नंगा। किन्तु यहाँ हफ्तेमें पाँच दिन और रोज चार ही घंटे प्रत्येक व्यक्तिको काम करना पळता है और इतनेहीमें स्वर्ग-सुख भोगनेकी सभी वस्तुएँ प्रस्तुत हो जाती हैं। पहलेकी सारी जिन्दगी जिन्दगीहीके लिए थी। आदमी रात दिन लगे रहकर तब अपने और अपने बाल-बच्चोंका पेट भर, तन ढाँक, जीवन-रक्षा करता था; दूसरे कामके लिए मुश्किलसे समय निकलता था। यहाँ मैं उन आदमियोंको नहीं गिनता हूँ, जिनका जीवन परायेकी मेहनत पर निर्भर था। उस समय मनुष्य कैसे अपने जीवनका कोई उच्च लक्ष्य रख सकता था जब कि इस प्रकारकी आपत्तियोंमें उसे पळा रहना पळता था? किन्तु अब तो अवस्था ही दूसरी हो गई है। ४ घंटे काम; बाकी २० घंटे सोना, पढ़ना, नृत्य-गान, सत्संग, विद्याव्यसन, परोपकार-चिन्तन, साहित्य-सेवा आदि सभी कामोंके लिए बचा हुआ है। इतनी सुखकी

सामग्रियोंसे घिरे रहने पर भी उसके लिए अपने जीवनका सर्वांश अर्पण नहीं करना पळता। प्रबन्ध कैसा है? वर्षमें नौ मास अपना कर्तव्य पालन करके आप तीन मास सैर-सपाटा भी कर सकते हैं, चाहे पृथ्वीके किसी भागमें भी स्वतंत्रता-पूर्वक घरकी भाँति सानन्द रेल, जहाज या विमान-द्वारा विचर आ सकते हैं। अपने-अपने कार्यक्षेत्रके चुननेमें भी स्वतंत्रता है। केवल योग्यता होनी चाहिये। फिर भारतीय अंगूरकी खेतीका जानकार फ्रान्समें जाकर बस सकता, रह सकता है।

पटनामें नालन्दा जानेवाली गाळी तैयार मिली। हमारी गाळीकी यहीं तक पहुँच थी। अन्य साथियोंसे विदा हो मैं और विश्वामित्र नालन्दा की गाळी पर जा बैठे।

९

अपूर्व स्वागत

अब हमारी गाळी दनदनाती नालन्दाके पास जा रही थी। प्रातः काल-का समय था। भगवान भुवन-ज्योति यद्यपि अभी पूर्वके क्षितिजपर दिखाई नहीं पळते थे, किन्तु उनके आनेका सम्वाद उषःकालीन रक्तिमा दे रही थी। दूर कृषि-विद्यालयके वृक्षोंके ऊपरसे यह लालिमा वैसे ही दीख पळती थी जैसे अँधेरी रात्रिमें दूरसे दिखलाती दावाग्नि। मानो भगवान भास्कर संसारके अन्धकारके दग्ध करनेमें अभी रुके हैं। यद्यपि अभी उनका साक्षात् आगमन नहीं हुआ किन्तु उनकी अवाईकी सूचना पाये हुए-से पक्षिगण इधर-उधर उळ-उळकर बैठ रहे हैं। रेल-लाइनकी दोनों ओर फलोंके भारसे लटके हुए चनोंके पौधे दूर तक दिखलाई पळते हैं, जिनमें कहीं-कहीं पतली-

पतली खेतोंमें जाने वाली लाइनें दिखलाई पळ जाती हैं। मैंने कहा, और तो सब है, किन्तु आजके लोगोंको चनेका होलहा तो न मुयस्सर होता होगा, किन्तु पीछे मेरा यह विचार भी गलत निकला। मैंने स्वयं पीछे होलहा खाया था। मेरे साथी भी शौचादिसे निवृत्त हो बैठे थे। गाळीमें कहीं कुछ लोग पुस्तक पढ़ते हुए दीख पळते थे—कुछ लोग गान कर रहे थे बाकी लोग भी चुपचाप अपने स्थानों पर बैठे अपने-अपने विचारोंमें मग्न थे। उस भीतरी सन्नाटेमें वही गाळीकी घळघळाहट कानोंमें आ रही थी। मैं भी शौचादिसे निवृत्त हो, स्नान-कोठरीसे स्नान करके आ बैठा। अब हमारी गाळी विद्यालय-भूमिमें प्रविष्ट हुई। चारो ओर दूर तक खेतोंसे घिरा एक तीनतला सुन्दर मकान है। उससे थोळी दूर पर एक ऊँचा चार महलका मकान है; जिसमें चारो ओरके मकानोंके बीचमें एक बळा भारी चौखुटा आंगन है। मकानके बाहर फूलोंकी शोभा निराली है। विश्वामित्रने बतलाया, यह कृषि-विद्यालय है; और यह उसका छात्रावास। ऐसे ही और भी थोळी-थोळी दूरपर विद्यालय मिलते गये। आखिर ठीक साढ़े छः बजे गाळी नालन्दाके बळे स्टेशन पर पहुँची। नालन्दाका घेरा बहुत भारी है। यहाँ ४ स्टेशन हैं, जो समीपस्थ विद्यालयके नामसे पुकारे जाते हैं। इस बळे स्टेशनका नाम है नालन्दा प्रधान।

प्रत्येक ट्रेनमें अन्य प्रबन्धोंके साथ बे-तारका टेलीफोन भी लगा रहता है। पिछले स्टेशन पर फिर विश्वामित्रने हमारे आनेकी सूचना आचार्यको दे दी थी। हमारी गाळीके स्टेशन पर पहुँचते ही विद्यालयके बच्चोंने सूचनाका बिगुल दिया। पटनामें चढ़ते वक्त हमलोग दरवाजेके

पास ही बैठे थे। अतः गाळी खळी होते ही उतर पळे। प्लैटफार्म पर आचार्य तथा पचास प्रधान-प्रधान उपाध्याय खळे थे। मेरे उतरते ही सबने 'स्वागत' किया; और गलेमें फूलोंकी माला डाली। स्टेशनसे बाहर यद्यपि मोटर खळी थी, किन्तु मैंने कहा, इतनी दूरके लिए इसकी आवश्यकता नहीं; दूसरे, मार्गमें खळे बच्चोंसे मिलनेमें भी कठिनाई उपस्थित होगी। अब हमलोग 'वसुबन्धु'-भवनकी ओर चले। सळककी दोनों ओर पाँतीसे विद्यालय-के छात्र खळे थे। यह सब बळी श्रेणियोंके छात्र थे। एक-एक विद्यालयके छात्रोंकी पंक्ति एक ही जगह थी। पहुँचतेके साथ ही उस-उस विद्यालयके प्रधान आचार्यका परिचय कराया जाता था। इस प्रकार आखिर 'वसु-बन्धु'-भवनका बळा हाल आ गया।

'वसुबन्धु'-भवनकी शोभा अपूर्व है। चारो ओर दूर तक घासका हरा मैदान है। मकान बहुत ऊँचा, सफेद संगमर्मरका-सा दीखता है। इसके चारो ओर संगमर्मरकी छतरियोंके नीचे पुराने और बीते हुए कितने ही आचार्यों एवं प्रसिद्ध महापुरुषोंकी मूर्तियाँ हैं। मुझे यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि यहाँ विद्याव्रतकी भी एक विशाल-मूर्ति स्थापित है। यह वही यशस्वी पुरुष हैं, जिन्होंने नालन्दाके पुनरुद्धार करते वक्त सर्व-प्रथम अपना सर्वस्व दिया था। सब स्थावर और जंगम सम्पत्ति उनकी पच्चीस लाखकी थी। इन्हें कोई सन्तान न थी। इन्होंने विद्यालयहीको अपना पुत्र बना, सर्वस्व अर्पण कर दिया। विद्याव्रतने सचमुच उस समय असाधारण साहस और स्वार्थ-त्यागका परिचय दिया था। मुझे स्मरण है कि जिस समय मेरे हृदयमें विद्यालयके पुनरुद्धारका विचार उठा, तो स्वयं

इस प्रकारका भी सन्देह उठता था, कि क्या मेरे ऐसा अकिंचन, अयोग्य व्यक्ति ऐसे भारी कार्यको उठा सकता है। मेरी हार्दिक इच्छा होती थी, कोई इससे बढ़कर ही महान् पुरुष इस कामको अपने हाथमें लेता तो मुझे भी उसके पीछे चलकर सब प्रकारसे सेवार्थ तैयार रहनेमें कितना आनन्द होता। किन्तु दुर्भाग्यसे महान् पुरुषोंको इन महत्त्वपूर्ण कार्योंका स्मरण न था, अथवा उपेक्षा थी। यही देख और सर्वथा अपनी अयोग्यता जानकर भी मैंने इस काममें हाथ डाल ही दिया। किन्तु इस काममें अनेक विद्वानोंके अतिरिक्त बहुत धनकी भी आवश्यकता थी। धनवानोंका अभाव न था, किन्तु उनमेंसे बहुत तो इसका महत्त्व ही नहीं समझते थे। जो समझ भी सकते थे, उन्हें ऐसा होनेपर विश्वास न था। अन्य जगहोंमें धनादि प्रदान करनेसे पदवियों और खिताबोंकी वृद्धिकी सम्भावना थी, वह यहाँ न थी; फिर ऐसी अवस्थामें कौन धनवान आगे बढ़ता?

मैंने बाल्यहीसे यद्यपि भिक्षु-आश्रम ग्रहण किया था, किन्तु भिक्षा माँगनेका अभ्यास न था। यह और भी एक कठिनाई थी। खैर, किसी-किसी तरह मैंने अपने आपको इसके लिए तैयार किया। उत्साही पुरुषोंने मेरी झोलीमें पळना आरम्भ किया। किन्तु फिर वही कठिनाई। यह सभी उत्साही पुरुष ऐसे थे जो अपने उत्साहके बराबर धन देने की सामर्थ्य न रखते थे। तो भी उनके उत्साहसे मुझे बळा उत्साह मिलता था। ऐसे समयमें विद्याव्रतके हृदयमें प्रेरणा हुई। यह मेरे लिए अपरिचित व्यक्ति थे। इससे पूर्व कभी इन्होंने ऐसे कार्योंमें हाथ भी न डाला था। परन्तु, न जाने हृदयमें एकदम क्या आया कि इन्होंने अपने सर्वस्वका दानपत्र मेरे पास भेज दिया।

आज दो शताब्दियोंके ऊपरकी बात मेरे लिए कलकी सी है। मेरे नेत्रोंके सामने अब भी मेरे वह सहयोगी फिर रहे हैं, जिन्होंने अपने जीवनको विद्यालयकी आधार-शिलाके नीचे डाला था। उस समयके हम लोगोंने उनका सम्मान किया---किन्तु उतना नहीं, जितनेके वे पात्र थे।

वसुबन्धु-भवन अर्द्धचन्द्राकार है। इसमें सवा लाख आदमियोंके बैठनेका स्थान है। बैठनेकी गैलरियाँ रंग-मंचके सन्मुखसे आरम्भ हो धीरे-धीरे ऊँची होती चली जाती हैं। यद्यपि वह रंग-मंचके सन्मुख अर्द्धचन्द्राकार दूर तक चली गई हैं, किन्तु इस प्रकार बनाई गई हैं, कि सभी दूर और नज-दीकके आदमी रंग-मंचको देख सकते हैं। इन गैलरियोंके नीचे-ऊपर तीन तहें हैं। बैठनेके लिए लम्बी-लम्बी कुर्सियाँ हैं। स्थान-स्थान पर बिजलीके लैम्प और पंखे लगे हुए हैं। रंग-मंचकी धीमी-सी आवाजको भी सबसे आखिर वाले श्रोता तकके कानमें बराबर पहुँचनेके लिए बीच-बीचमें शब्द-प्रसारक यंत्र लगे हुए हैं। यह शब्दोंको श्रोतव्य बनाते हैं। प्रत्येक तलमें वायु और सूर्य-प्रकाशके आने-जानेके लिए पर्याप्त रोशनदान और वातायन हैं। दीवारोंपर भूमंडलके प्राचीन और अर्वाचीन महापुरुषोंके चित्र और सुनहरे अक्षरोंमें सूक्तियाँ लगी हुई हैं। इन चित्रोंमें अधिकांश विद्यालय-के ही छात्रों और अध्यापकोंके बनाये हुए हैं। छात्रों और छात्राओं, दोनों के बैठनेके लिए भवनमें स्थान हैं। बैठनेकी जगहोंपर पहुँचनेके लिए सीढ़ियाँ बाहरसे लगी हुई हैं। केवल रंग-मंचपर जानेका मार्ग सामने पळता है। रंग-मंचकी बगलमें नेपथ्य-शाला है, जहाँ नाटक करनेके समय पात्र नेपथ्य-परिवर्त्तन करते हैं।

विद्यालयकी इस प्रकारकी श्री-वृद्धि देखकर मेरे आनन्दकी सीमा न थी। मेरे समयसे अब बहुत फर्क हो चुका था। विश्राम-स्थानपर पहुँच-कर वहाँ जलपानके लिए सब-कुछ तैयार पाया। मैंने विश्वामित्र, आचार्य वशिष्ठ तथा अन्य प्रधान अध्यापक, अध्यापिकाओंके साथ जलपान किया। जलपानके बाद आजका प्रोग्राम शिशु-कक्षा देखना निश्चित हुआ।

अपने लळके या लळकी, या किसी सम्बन्धीसे मिलने आया था; कोई ऐसे ही अपनी वार्षिक छुट्टियोंमें मनोरंजनके लिए आया हुआ था। कोई किसी विद्या-सम्बन्धी जिज्ञासासे आया था।

आखिर ट्राम वालक-वालिकाओंके उद्यानके मुख्य द्वारपर पहुँच गई। हम लोग नीचे उतरे। अध्यापिका-वर्गने द्वारपर स्वागत किया। द्वार तथा उसकी सीधमें तीन-तल्ला मकान स्वच्छता-सुन्दरतासे परिपूर्ण है। भीतर मकानोंके अतिरिक्त, एक वळा भारी वाग वैसा ही लगा हुआ है, जैसा कि सेवग्रामके शिशु-उद्यानमें; फर्क यही है, कि वालकोंकी संख्या अधिक होनेसे यह एक स्वतंत्र ग्राम-सा मालूम होता है। सोनेके कमरोंके अतिरिक्त पाक-शाला, भोजनागार, चिकित्सालय तथा भाण्डार-घर हैं। भीतर वच्चोंको खुले पानीमें तैरने और नहानेके लिए वहते पानीका एक पक्का कुण्ड है, जिसमें डुवाव पानी नहीं रहता। जगह-जगह वागमें फव्वारे और लतागृह वने हुए हैं। खेलनेके लिए हरी घासोंसे ढँके वळे-वळे मैदान हैं। जाळेके दिनोंमें स्नानके लिए एक वळे मकानके भीतर गर्म पानीका कुण्ड है।

शिक्षा देनेवाली सभी महिलायें ही हैं। शिशु-कक्षामें प्रत्येक वालक-वालिकाको तीन वर्ष रहना पळता है। पहले वतलाया जा चुका है, कि राष्ट्रीय नियमके अनुसार सभी वालक-वालिकायें तीन वर्षकी अवस्थाके वाद माता-पितासे अलग करके विद्यालयोंमें भेज दिये जाते हैं। सम्पूर्ण शिक्षा तीन कक्षाओंमें विभक्त है। शिशु-कक्षा चौथे वर्षकी अवस्थाके आरम्भ होते ही आरम्भ होकर छवें वर्षकी समाप्तिके साथ समाप्त होती

नायक स्वयं चुनते हैं। एक-एक टोलीके लिये एक-एक सोनेका कमरा है।

रात्रिमें जब बालक-बालिकायें अपने-अपने बिस्तरों पर लेटते हैं, तो अध्यापिकायें इतिहासके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुरुषोंकी कथायें सुनाती हैं। इन कथाओंमें सन्-तारीख नहीं रहते। हाँ , यह बता दिया जाता है, कि अशोक बुद्धके बाद हुए थे—चंद्रगुप्त विक्रमादित्य उनके भी बाद। कथाओंकी भाषा सरल, तथा भाव वही लिये जाते हैं, जिन्हें बालक आसानीसे समझ सकें। यह कथायें इतिहास, भ्रमण और विज्ञान आदि सभीके सम्बन्धमें हुआ करती हैं। कभी-कभी छात्र इन्हें स्वयं भी दुहराया करते हैं। कभी अध्यापिका और विद्यार्थी-वर्ग कोई-कोई गीत भी मिलकर गाते हैं। बालकोंको स्वास्थ्य तथा स्वच्छता-सम्बन्धी नियम भी बळे ध्यान-पूर्वक बतलाये जाते हैं। उन्हें अपने ही नहीं, अपने आसपासको स्वच्छ रखने-रखवानेकी शिक्षा दी जाती है। उन्हें भली प्रकार बतला दिया जाता है, कि केवल तुम्हारी ही स्वच्छता पर्याप्त नहीं है, तुम्हारे अळोस-पळोसमें भी स्वच्छता होनी चाहिये। अपने यहाँ सफाई करके कभी अपने कूळा-कर्कटको दूसरेके यहाँ न फेंक दो। किसी जगह इस प्रकार कुछ पळा हुआ देखकर स्वयं उसे हटा दो, या उपयुक्त व्यक्तिको उसकी सूचना दे दो। उन्हें बळोंका आदर और छोटोंसे प्रेम-भाव रखना सिखला दिया जाता है। बालक संसारके लिये जीवन उत्सर्ग करनेवाले पुरुषोंकी कथाओंको बळे प्रेमसे सुनते हैं। अध्यापिकायें उन्हें बळे मधुर और हृदय-ग्राहक शब्दोंमें कहती हैं। बालक कितनी ही बार सुनते-सुनते करुणाभिभूत हो आँसू बहाते देखे जाते हैं।

हैं। शिशु-कक्षाके छात्रोंकी पोशाक जाँघिया, मोजा, जूता, और कोट या कुर्ता है। जाळेके दिनोंमें सिर ढाँकनेका गुलवन्द भी पहिनते हैं। कहीं किसी प्रकारके आभूपणका वहाँ नाम नहीं होता, किन्तु वस्त्र, ऋतुके अनुकूल तथा सुन्दर होते हैं। इस पोशाकमें वालक-वालिकायें वळे फुर्तीले दीख पळते हैं।

हमारे जानेपर अपने-अपने नायकोंको सामने किये हुए सब टोलियाँ खळी थीं, शिशु-पार्लियामेंटके प्रधान और मंत्रियोंने शिशु-समाजकी ओरसे हमारा स्वागत किया। मेरे कहनेपर अखाळेका खेल देखना निश्चित हुआ। बालकोंने स्वयं अपनी-अपनी जोळी चुनी। ऐसी दस जोळियोंको मैंने निश्चय किया। इनमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय सभी वर्षोंके वालक थे। अखाळेपर पहुँचकर पहली जोळी प्रथम वर्षके लळकोंकी छोळी गई। इनका नाम कृष्ण और इब्राहीम था। अखाळेमें पहुँचनेसे पहले ही इन्होंने कपळा उतार कुश्तीका जाँघिया चढ़ाया। पहले तो दोनों दूरसे दाव तकते रहे। आखिर गुत्यमगुत्थी हो गई। वालकोंको लळनेके कायदे भी वतलाये गये हैं कि सफल होनेपर भी किन-किन अंगों पर चोट करने या पकळनेसे हार हो जाती है। इब्राहीमने कृष्णको आखिर नीचे कर ही दिया, किन्तु कृष्ण भी एक था। इब्राहीम चित करते-करते हार गया, किन्तु वह चित न हुआ। जव वह इसमें लगा हुआ था, तभी अवसर देख कृष्ण ने ऐसी झपट मारी, कि इब्राहीम चारो खाने चित्त। दर्शक शिशु-समाज ने आनन्द-ध्वनि की। अब दोनों अलग-अलग खळे हो गये। इब्राहीमने एक वार और औसर देनेकी प्रार्थना की। कृष्णने कहा—भाई इब्राहीम!

जाति थी। पुरुष-जातिने इनकी शक्तिको मूर्खतासे विकसित होनेसे रोक दिया था। उनको यह न मालूम था कि इससे उनकी अपनी भी हानि है। मैंने कहा—इन्हींमें आखिर उन अस्पृश्योंकी भी सन्तानें हैं, जिन्हें उस समयके लोग यदि मनुष्य कहते थे, तो मानों बळी कृपा करते थे। अन्यथा उन्हें पशुओंसे भी वदतर समझा जाता था। कुत्तेको गोदमें बिठानेमें संकोच न था, किन्तु मजाल क्या कि किस्मतके मारे वह पुरुष पासमें फटक सके। ओह! कितने करोळ ऐसे मनुष्योंके अमूल्य जीवन वरवाद कर दिये गये? अन्यायका कुछ ठिकाना था? उन अभागोंको गाँवमें कुआँ रहनेपर भी कुएँका पानी पीनेको नसीब न होता था। और दोषोंके साथ उनपर सबसे बळा दोष यह लगाया जाता था, कि वे मैला साफ करते हैं—वह मुर्दे पशुओंको ले जाते हैं इत्यादि। किन्तु उन दोष-दर्शकोंको यह न सूझता था, कि समाजकी ऐसी सेवाके लिए—जिसे कि करनेके लिये और लोग तैयार न थे, तथा जिसपर समाजकी सुस्थिति निर्भर है—उनका कृतज्ञ होना चाहिये, न कि उलटा उन्हें तिरस्कारका पात्र बनाना चाहिये। खैर! वह भी एक स्वप्नका समय था, यद्यपि वह स्वप्न हजारों वर्षों लम्बा-चौळा था। आखिर मनुष्योंने समझा—एक दूसरेको छोटा वनानेसे हमें स्वयं नीच वनना पळता है। संसार फिर उस स्वप्नको न देखे, उस नशे या मोह-निद्रामें न पळे।

इस प्रकार आज शिशु-कक्षाका निरीक्षण समाप्त हुआ। अध्यापिकायें सभी उत्तम योग्यताकी हैं। साथिन वीरा जिस प्रकार कन्याओंके लिए आदर्श हैं, वैसे ही वालकोंके लिए सच्ची निर्माता माता हैं। सब देखकर

प्रायः तीन बजे हमलोग अतिथि-विश्रामको लौट आये। कलके लिए बाल-कक्षाका देखना तै पाया। इसके बाद बहुत देर तक विद्यालयके दो शताब्दियोंके इतिहासके बारेमें वार्तालाप होता रहा।

११

शिक्षा-पद्धति : बाल-कक्षा

आज सवेरे ट्रामपर सवार हो, हमलोग बाल-कक्षाकी ओर चले। यह और भी दूर, अर्थात् दो कोसपर थी। पहले कहे अनुसार बाल-कक्षा ८ वर्षकी अर्थात् ६ से १४ तककी है। इसमें दो-दो वर्षकी उपकक्षायें बनाई गई हैं, जिनके लिए पृथक्-पृथक् निवासोद्यान हैं। बाल-कक्षामें संक्षेपसे साहित्य, गणित, भूगोल, व्याकरण, धर्म, संगीत, आलेख्य, कृषि, गोरक्षा आदि विषय हैं। किन्तु यह सभी प्रत्येक छात्रको पढ़ना आवश्यक नहीं है। विद्याओंकी ओर प्रलोभन-द्वारा प्रवृत्ति कराकर देखनेपर जिधर बालकका स्वाभाविक रुझान नहीं देखा जाता, उधर बल नहीं दिया जाता। उदाहरणार्थ इस श्रेणीमें प्रविष्ट हो, तीसरेसे पाँचवें वर्ष तक प्रत्येक बालकको

संस्कृत आदि किसी भाषाके सिखानेकी प्रथा है। इन भाषाओंके सिखानेका वातावरण इस प्रकारका बनाया गया है, (यह पहले सूचित किया गया है) जहाँ बालकको छोटे शिशुओंकी भाँति भाषा सीखनेकी अनुकूलता रहती है। जबर्दस्ती मस्तिष्कपर लादनेका प्रयत्न नहीं किया जाता। किन्तु देखनेपर जब मालूम हो जाता है, कि बालककी उधर रुचि नहीं है, तो फिर बल नहीं दिया जाता। बाल-कक्षामें दाखिल होनेके साथ ही बालकोंको उनके नित्य-कृत्य बतला दिये जाते हैं।

बाल-कक्षामें पहुँचते ही वहाँ भी अध्यापक-अध्यापिका-वर्ग तथा विद्यार्थी-समाजकी ओरसे हमारा स्वागत हुआ। सब बालक-बालिका श्रेणीसे खळे थे। पोशाक सबकी जाँघिया और कुर्त्ता था। जाळेमें सिर ढाँकनेके लिए गर्म वस्त्र, एवं जूता-मोजा भी मिलता है। एक-एक उपकक्षाका एक-एक गाँव बसा हुआ है, जहाँ भोजनालय, संस्थागारके अतिरिक्त भांडार भी रहता है। यहाँ भी तैरकर नहानेका कुंड है तथा अखाळों और खेलोंके मैदानोंका पूरा प्रबन्ध है। मकान तीन-महले हैं। ऊपर जानेके लिए बिजलीका झूला है। २०-२० विद्यार्थियोंके सोनेके लिए एक-एक कमरा मिलता है। लिखने-पढ़ने, प्रकाश, पुस्तक रखने आदि सबका उसमें प्रबन्ध है। निद्रासे उठकर शौचादि जाना पाँच ही बजे होता है। स्नान आदिसे निवृत्त होकर बालक कलेवा करते हैं। भोजनके लिए जो चार समय नियत हैं, वही बाल-कक्षाके लिए भी हैं—शिशु-कक्षाकी भाँति छः बार नहीं। अध्यापनके लिए यहाँ पृथक् पाठशाला है। बैठनेके लिए बेंचें हैं।

यद्यपि बाल-कक्षासे नियमानुसार पढ़ाई शुरू होती है, तो भी विषयको

रुचिकर वनानेकी ओर खूब ध्यान रहता है। इस समय मनोहर भापामें लिखी पुस्तकों, नाटकों और वायस्कोपों-द्वारा इतिहासकी शिक्षाको भी जारी रक्खा जाता है। नाटकोंको वालक स्वयं अभिनीत करते हैं। विज्ञान और ज्योतिप-सम्वन्धी जिज्ञासाओंकी पूर्तिके लिए उत्कंठा होनेपर दूरवीक्षण, अणुवीक्षण एवं प्रयोगशालाओंका भी सहारा लिया जाता है। कृपि, गो-रक्षा आदि विद्यायें क्रियात्मक ही अधिकतर सिखाई जाती हैं, जिसके लिए खेत तथा गोशाला आदिका प्रवन्ध है। वाल-कक्षाके प्रथम दो वर्षोको समाप्तकर विद्यार्थियोंको सार्वभौमी भापाकी शिक्षा दो वर्ष तक दी जाती हैं। इस समय और विपय पूर्ववत् ही मातृ-भापामें चलते रहते हैं। सिर्फ वालकोंका निवास सार्वभौमी छात्रावासमें होता है, जहाँ सव लोग केवल वही भापा वोलते हैं।

यह सार्वभौमी भापा क्या है? यह एस्पेरेंटो भापाका और भी परिमार्जित रूप है। एस्पेरेंटोमें प्रयुक्त होनेवाले आर्टिकल्स (Articles) को उळा दिया गया। विल्कुल पन्द्रह नियमोंमें इसका सारा व्याकरण समाप्त होता है। लिंग, विभक्ति, प्रत्ययमें अटल नियम हैं, जिनका अपवाद कहीं नहीं होता। जैसे वचन दो ही हैं—एक वचन, वहुवचन। लिंग तीनों हैं, किन्तु निर्जीव पदार्थोमें सभीके लिए नपुंसक लिंगका प्रयोग होता है। स्त्रीलिंगवाले सभी शव्द आ, ई, ऊ, अन्तवाले होते हैं तथा केवल सजीव ही के लिए प्रयुक्त होते हैं। ऐसे ही अन्य स्वर-अन्तवाले शव्द सजीवके लिए आनेपर पुल्लिग होते हैं। क्रिया-रूपोंके लिए सीधे-सीधे चार काल हैं, अर्थात् भूत, भविष्य, वर्त्तमान और आज्ञा। वचन यहाँ भी दो हैं। वाकी पुरुप

ज्यों-के-त्यों हैं। धातुओंका चुनाव खास तौरसे हुआ है। पहले पाली, प्राकृत ज़ेन्द, और संस्कृत भाषाओंमें जो धातु एक-से हैं, उन्हें छांट लिया गया है। अब इन धातुओंसे ग्रीक, लैटिन, एवं ट्युटानिक (Teutonic), रोमन (Roman), स्लाव (Slav) और केल्टिक (Celtic) भाषाओंकी धातुओंसे तुलना करके जो धातु बहुत-सी भाषाओंमें सम्मिलित हैं, उन्हें चुन लिया गया है। सार्वभौमीमें इन्हीं धातुओंसे बने शब्दों और क्रियाओंको लिया गया है। वैज्ञानिक शब्द जो अब तक यूरोपीय भाषाओंमें प्रचलित थे, वही स्वीकार कर लिये गये हैं, केवल उनके अन्तमें उनके लिंगके अनुसार प्रत्यय लगा दी गई हैं। अपने जीवनमें राष्ट्रीय आवश्यकता या भ्रमण आदिके लिए इस भाषाकी बळी आवश्यकता है। इसलिए बाल-कक्षामें नवें और दसवें वर्षमें इसकी शिक्षा अनिवार्य-सी है। सार्वभौमी छात्रावासमें जानेपर मुझे सभी बालक उसीमें वार्तालाप करते मिले। उस समय दसवें वर्षवालोंने मेरे आनेके उपलक्षमें अपनी प्रसन्नता इसी भाषामें प्रकट की। जिसके बहुतसे शब्द मुझे समझमें आने लगे थे। लोगोंने बतलाया, यह भाषा भूमंडल-वासियोंकी प्रायः सभी मातृ-भाषाओंका पूर्ण बीज रखनेसे सभीके लिए आसान है। चीन, जापान, स्याम, तिब्बत, बर्मा आदि देशोंमें भी इसका खूब प्रचार है। × × × × × × × × भारतमें सभी जगह भारती भाषा इस समय मातृ-भाषा है। पेशावरसे बगदाद तक बोली जानेवाली फारसी या उसकी बहिन भी इसके कुलकी है। यूरोपकी भाषाओंकी भी वही दशा है, जिनका प्रचार यूरोप ही नहीं, अफ्रिका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा भूमंडलके अन्य द्वीपोंमें है।

यह पहले कहा जा चुका है, कि आजकलकी शिक्षा-प्रणालीका मूल सूत्र है बालककी स्वाभाविक जिज्ञासा रखनेवाली बुद्धिको उसके अभीष्ट लाभमें मदद पहुँचाना। इसीलिए परीक्षा करके जिस ओर बालककी स्वाभाविक रुचि होती है, उधर ही उसकी शिक्षाका मार्ग खोला जाता है। दो शताब्दियोंके अनुभवने बतला दिया है, कि यही वास्तविक शिक्षा है। जबर्दस्ती ठोंक-पीटकर वैद्य-राज बनानेवाले विचारने अनेक स्थानोंपर बाधा पहुँचाई थी। पुराने समयके लोग भी खूब थे—खासकर २०वीं शताब्दीके। जिस प्रकार माता-पिता पुत्रकी इच्छा और उद्देश्यको देखे बिना बालपनहीमें उसका जोळा उसके गले बाँधते थे, वैसे ही यह भी निश्चय कर डालते थे कि मेरा लळका वकील होगा, मेरा डाक्टर इत्यादि। फल इसका यह होता था कि कितनी ही बार बालकको अपनी विद्या, रोचक कौन कहे, क्वीनैनकी गोलीसे भी कळवी मालूम होती थी; और उसका कोई सुपरिणाम न होता था। किन्तु अब मामूली शिष्टाचार और लोक-व्यवहारका उपयोगी ज्ञान तो बालकोंको देखते-देखते और सुनते-सुनते हो जाता है। और विद्याकी बात उनकी प्रवृत्तिपर आरम्भ होती है। इस प्रकार गणित और ज्योतिषकी ओर प्रवृत्ति रखनेवाले बालक उतना ज्ञान बाल-कक्षाहीमें सम्पादन कर लेते हैं, जितना बीसवीं शताब्दीके उस विषयके एम० ए० भी नहीं जानते थे। अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति, अक्षमिति, चलनकलन आदि सभी गणितकी शाखाओंमें उनका पूरा अधिकार हो जाता है। वह अपने पाठ्य विषयमें नित्य नवीन उत्सुकता और उत्साहके साथ संलग्न रहते हैं। उनका पठित विषय बहुत कुछ

उपस्थित रहता है। साधारण ज्योतिषकी शिक्षा तो उनकी प्रथमहीसे आरम्भ रहती है। अपने अगले मार्गमें जहां-जहां जिस-जिस गणितकी आवश्यकता प्रतीत होती है, उधर बड़े आनन्दसे वह प्रवृत्त होते हैं। साहित्य, भाषा, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदिमें भी यही बात है, यद्यपि कोई बालक इन विद्याओंके साधारण ज्ञानसे भी सर्वथा अनभिज्ञ नहीं रहता। कारण, उसके नित्यके व्यवहारमें, बात-चीतमें, संसर्गमें उनकी आवश्यकता पड़ती है। भविष्य-जीवनमें भी उनका साधारण ज्ञान अनिवार्य मालूम होनेसे वे उधर भी थोड़ा-बहुत परिश्रम स्वयं कर डालते हैं; किन्तु प्रकृतिके अनुकूल न होनेसे वह अधिक दूर तक उसमें नहीं जाते। बीसवीं शताब्दीमें जैसे खास-खास ही पाठ्य पुस्तकें रख दी जाती थीं, वैसा अब नहीं है। कौन-सी पुस्तक अब पढ़नेको देनी चाहिये, यह उस अध्यापककी इच्छापर निर्भर है, जो अपने विद्यार्थीकी प्रकृतिका बराबर निरीक्षण कर रहा है। समान प्रकृतिवाले छात्रोंकी टोलियां बनी रहती हैं, जिनके लिए प्रकृत विषयका मर्मज्ञ अध्यापक रहता है। विद्याके लिए अपेक्षित सभी सामान मौजूद रहते हैं। इस प्रकार शिक्षामें आजकी चाल आकाश-विमानोंहीकी भांति तेज है।

बाल-कक्षाकी सभी बस्तियोंको हमने घूम-घूमकर देखा। सिर्फ इसी एक कक्षाके पांच बड़े-बड़े ग्राम हैं। हर एक ग्राममें निवासियोंकी आवश्यकताके सभी सामान मौजूद रहते हैं। अन्यत्र जैसे मैंने सब जगह यह नियम-सा देखा था कि मकान कोठेवाले नहीं होते, यहां विद्यालयमें सभी मकान तीन-महला, चार-महलासे ऊपरहीके हैं। शिशु-कक्षाकी बस्तियोंकी भांति

ही बाल-कक्षामें भी एक-एक सोनेके कमरोंमें बहुत-से विद्यार्थी सोते हैं।

विद्यार्थियोंको पुस्तकें तथा अन्य सामान रखनेके लिए अलग-अलग आलमारियाँ हैं। पढ़नेके लिए पृथक् भी पाठशालाका विशाल भवन है। खेलने-कूदने, लळने, तैरने आदिके बळे-बळे मैदान तथा तालाव हैं। वालकोंका शरीर देखनेहीसे पता लगता है कि उनकी शारीरिक उन्नतिपर कितना ध्यान दिया जाता है। सब बातोंका पूरा निरीक्षण करके दोपहरका भोजन भी हमने यहीं ग्रहण किया।

चौदह वर्षहीकी अवस्थामें वालिकाओंको इतना ज्ञान हो जाता है, जो कि २०वीं शताब्दीमें पर्याप्तसे भी कहीं अधिक कहा जाता। वालकोंकी अपेक्षा वालिकायें संगीत, आलेख्य, चिकित्सा और साहित्यमें अधिक रुचि रखतीं तथा योग्य भी निकलती हैं। वालिकाओंकी अवस्था देखकर वीसवीं शताब्दीके वे आदमी भी अपने विचार वदल डालते, जिन्हें कई निर्वलतायें स्त्री-जातिमें स्वाभाविक मालूम होती थीं। मुझे यहाँके शिक्षण और योग्यताको देखकर निश्चय हो गया कि आजकलके मानव-जगत्की वहुत-सी न्यामतें इसीकी वदौलत हैं। एक ओर तो हजारों झगळों और आपत्तियोंकी जळ पारस्परिक असमानता उठा दी गई और दूसरी ओर ऐसी सर्व-गुण-भूषित शिक्षा; फिर क्यों न मनुष्यलोक पुराने ख्याली देवलोकसे भी अच्छा हो जाये ?

१२

शिक्षा-पद्धति : तरुण-कक्षा

पूर्व क्रमहीसे में नित्य विद्यालयके एक-दो विभागोंका निरीक्षण करता रहा। और १२ दिन ऐसा करते रहनेपर एक बार सरसरी तौरसे सबको देख सका। शिशु-कक्षा और बाल-कक्षाकी शिक्षा जिस प्रकार अनेक विषयोंमें होती है (यद्यपि उसमें विद्यार्थीकी स्वाभाविक प्रवृत्तिका पूरा ध्यान रखा जाता है) वैसा मिश्रशिक्षण तरुण-कक्षामें नहीं है। संसारके व्यवहारोंको अच्छी तरह चलाने, तथा मनुष्यकी वैसी जिज्ञासा भी होनेसे, प्रथम दो कक्षाओंमें कुछ सर्वतोमुखी-सी शिक्षा दी जाती है, किन्तु तरुण-कक्षामें शिक्षा पानेवालोंके लिए अनेक विद्यालय हैं, जो विद्याकी एक शाखाकी शिक्षा देते हैं। विद्यार्थी अब केवल उसी विद्याका अध्ययन करता है, जिसकी ओर उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है और जिसे उसने

पिछले वर्षोंमें भी मुख्य तौरसे, औरोंको गौण रखते हुए, पढ़ा है। यद्यपि ऐसे वालकोंकी संख्या वहुत कम होती है, किन्तु हैं ऐसे भी विद्यार्थी, जो व्यवहारोपयोगी ज्ञानसे इसलिए अनभिज्ञ रह जाते हैं, कि उनकी रुचि न होनेसे उधर उनको परिश्रम नहीं कराया जाता।

नालन्दा विद्यालयमें पृथक्-पृथक् विषयोंके पन्द्रह विद्यालय हैं, जो भाषा-पुरातत्व, ज्योतिष, दर्शन, विज्ञान, साहित्य, संगीत, आलेख्य, वास्तु (सिविल इंजीनियरिंग), आयुर्वेद, वनस्पति, प्राणि, कृषि, यांत्रिक एवं शिक्षण विद्यालयोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। अध्यापक अपने-अपने विषयके पूर्ण ज्ञाता हैं। भाषा-पुरातत्त्व विद्यालयमें इतिहासकी मौलिक सामग्रीसे परिचय एवं उसके एकत्रित करनेका ढंग वतलाया जाता है। यह बीसवीं शताब्दी नहीं, वाइसवीं शताब्दी है। भूमि, वालू अथवा समुद्रोंके नीचे पळी हुई बहुत-सी सामग्रियाँ बहुतायतसे इधर मिली हैं। अनेक पुरानी जातियोंके धर्म, आचार-विचार तथा इतिहासपर इधर वहुत प्रकाश पळा है। भारत, मिश्र, असुर, कल्दान, ईरान, मेक्सिको, ब्राजील आदि अनेक देशोंकी प्राचीन सभ्यताकी परिचायक अनेक सामग्रियाँ हाथ लगी हैं। राष्ट्रने इन सामग्रियोंके प्राप्त करने और रक्षित रखनेमें कोई कसर नहीं उठा रखी है। जहाँ प्राचीन खंडहरोंको खोदने, चीजोंकी रक्षाके लिए सुरक्षित स्थान बनानेमें लाखों आदमी काम कर रहे हैं, वहाँ हजारों विद्वान दिन-रात उनके रहस्यके खोलनेके लिए भी परिश्रम कर रहे हैं। भारत की प्राचीन सभ्यता और इतिहासके लिए मध्य एशिया, तिब्बत, हिमालय, जावा, वाली, स्याम, सुमात्रा और लंका (सीलोन) तक छान मारा गया है। इस काममें नालन्दा-

भूमंडलमें एक जगहसे दूसरी जगहपर। पहले एक दूसरेकी भाषा समझनेमें कठिनाई हुई थी, किन्तु अव वह भी जाती रही। यद्यपि दिन-प्रति-दिन वृष्टि और जलकी कमी होती जाने एवं मंगल-गर्भीय उष्णता—जीवनी-शक्ति—का ह्रास होते जानेसे वहाँके लोग चिन्तित हैं, तो भी उन्होंने इसके लिए वहुत-सा उपाय किया है। जहाँ एक ओर नहरोंका जाल-सा विछा दिया है, वहाँ अपने यहाँकी जन-वृद्धिको भी रोक दिया है—रोक ही नहीं, वल्कि कम करना आरम्भ किया है। यद्यपि लोग भी इसके प्रयत्नमें हैं, कि किसी नये ग्रहमें जायँ, किन्तु अभी तक इसका कोई उपाय नहीं सूझा है। भूमंडलके लोग भी, उनकी कठिनाइयोंको देखकर चुप नहीं हैं। वह भी इसका हल ढूँढ़ रहे हैं। कोई-कोई इस वातकी भविष्यद्वाणी भी करने लगे हैं, कि वह समय समीप है, जवकि मनुष्य एक ग्रहसे दूसरे ग्रहमें जा सकेंगे। यदि ऐसा हो सका, तो हमारा अपने रहन-सहनका संसार तथा भाई-वन्धुपन और भी वढ़ जायगा। एक-एक ग्रहके ठंढा होनेपर लोग पहलेहीसे दूसरे ग्रहमें चले जा सकेंगे। इस प्रकार कमसे कम वृहस्पतिकी आयु-भर तो निश्चित रहेंगे। वैभारगिरिपर वेधशालाके कामहीके लिए दूर तक मकान वन गये हैं। पानी और विजलीका ऊपर ही खूव अच्छा प्रवन्ध हो जानेसे वह और भी अधिक आनन्दका स्थान हो गया है।

दर्शन-विद्यालय यहाँसे दो कोस पीछेकी ओर है। यहाँ भारतीय सेश्वर-निरीश्वर दर्शन ही नहीं, भूमंडल भरके दार्शनिक विचारोंका अध्ययना-ध्यापन होता है। आचार्य वशिष्ठ इस विपयके स्वयं अपूर्व विद्वान् हैं। उनका वहुत समय इसीके पठन-पाठनमें व्यतीत होता है। सभी विद्यालय एक

दूसरेसे दूर-दूरपर हैं। उनके बीचमें या तो मैदान हैं, या आम-लीची आदि फलोंके कोसों लम्बे बाग। सभी विद्यालय पुस्तकालयों तथा अपेक्षित अन्य सामग्रियोंसे युक्त हैं। जहाँ विज्ञान-विद्यालय रसायनशाला तथा प्रयोगशालासे सुसज्जित है; वहाँ वनस्पति और प्राणिशास्त्रके विद्यालयोंके साथ बळे-बळे वनस्पति-उद्यान एवं प्राणि-संग्रहालय हैं। इस प्रकार सभी विद्यालय सांगोपांग विद्या-वितरण कर रहे हैं। उन-उन विद्यालयोंके छात्रावास उनके पासहीमें हैं। छात्रावास क्या हैं, एक-एक ग्राम हैं। बालकों और बालिकाओंके छात्रावास तथा विद्यालय इकट्ठे ही हैं। स्त्री-पुरुषका भेद ही उठा-सा दिया गया है।

विद्यालयकी बस्तियोंमें भोजन बनानेवाले तथा स्वच्छता एवं मशीनों आदिके सुधारनेके लिए कुछ और लोग नियुक्त हैं, जिनके निवास-स्थान अलग बस्तियोंमें हैं। लळकोंके वस्त्र धोने एवं कपळा सीनेके गाँव भी पृथक् हैं। इसी तरह गोपाल-ग्राम भी पास, किन्तु विद्यालयकी सीमाके बाहर है। पुस्तकोंके छापनेके लिए जो 'नालन्दा प्रेस' पहले खोला गया था, अब उसका काम बहुत बढ़ गया है। भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके यहाँसे मासिक कई एक पत्र निकलते हैं। नालन्दाके पुराने स्तूपों और इमारतोंको पूरा सुरक्षित रक्खा गया है। भैरवजीके नामसे २०वीं शताब्दीके ग्राम्यजनोंमें प्रसिद्ध बुद्धकी मूर्तिपर अब एक बहुत अच्छी छतरी लग गई है। वह विशालकाय, सुन्दर शांत मूर्ति अब और भी अधिक मनोहर मालूम होती है। उसके पासका बळा स्तूप अब नया-सा मालूम होता है। सूर्यनारायण और उसके पासका वह गाँव अब नहीं है।

विद्यालयकी तरुण-कक्षा, एवं विद्यालयकी शिक्षा समाप्त कर और अधिक पढ़नेवाले विशेषज्ञोंकी श्रेणीमें भारतसे बाहर लंका, बर्मा, स्याम, जावा, चीन, जापान, तिब्बत आदि देशोंके विद्यार्थी बहुत अधिक संख्यामें हैं। इन देशोंके आचार्योंमें आजकल नालन्दाके शिक्षितोंकी काफी संख्या है। संसारमें कोई विद्या नहीं, जिसकी उच्च शिक्षा विद्यालय न देता हो। ऐसे ही संसारका शायद ही कोई कोना होगा, जहाँ नालन्दाका छात्र न हो।

१३

शासन-प्रणाली

नालन्दामें रहते हुए और कामोंके साथ मैंने उचित समझा, कि आजकलकी शासन-प्रणालीका भी ज्ञान प्राप्त करूँ। इस कार्यमें उपाध्याय विश्वामित्रने वळी सहायता की। अब-तकके वर्णनसे यह मालूम ही हुआ होगा, कि भूमंडलमें सभी जगह् अब समताका राज्य है। धर्मके नामपर, ब्राह्मण-राजपूत-शेख-सय्यद जातियोंके नामपर, धन और प्रभुताके नाम-पर, गोरे और कालेके नामपर, जो अत्याचार पहले होते थे, कितनी ही मानव-सन्तानें दूसरोंके पैरोंके नीचे आजन्म कुचली जाती रहती थीं, उन सबका अब नाम नहीं। अब मनुष्य-मनुष्य बराबर हैं, स्त्री-पुरुष बराबर हैं। सभी जगह् श्रम और भोगका समत्व मूल-मंत्र रखा गया है। न अब

भूमंडलमें जमींदार हैं; न सेठ-साहूकार हैं; न राजा हैं, न प्रजा; न धनी हैं, न निर्धन; न ऊँच हैं, न नीच। सारे भूमंडलके निवासियोंका एक कुटुम्ब है। पृथ्वीकी सभी स्थावर-जंगम सम्पत्ति उसी कुटुम्बकी सम्पत्ति है। दैनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए जिन-जिन पदार्थोंकी आवश्यकता है, उनके उत्पादन और संग्रहके लिए अपनी-अपनी योग्यतानुसार सभी सचेष्ट होते हैं। श्रम कम और उत्पत्ति अधिक होनेके लिए कार्यों और श्रमोंके बहुत-से विभाग कर दिये गये हैं। बीसवीं शताब्दीके लोगोंको आजकलका विभाग विचित्र-सा मालूम होता। अब तो जीवनकी एक भी आवश्यक वस्तु शायद ही एक कोई गाँव, बिना दूसरेकी सहायताके, उत्पन्न करता हो। जहाँ पहलेका एक ग्राम अनेक प्रकारके अनाज, साग-तरकारियोंके अतिरिक्त कितने ही छोटे-छोटे शिल्पोंका भी व्यवसाय करता था, वहाँ आजका यह विचित्र गाँव है, जो आकार, संख्या और खर्चमें उससे कई गुना बळा होने पर भी एक भी चीज पूरे तौरसे पैदा नहीं करता। यदि गेहूँ पैदा करता है, तो आटा दूसरी जगह पीसा जाता है; यदि ऊख पैदा करता है, तो चीनी दूसरी जगह बनती है; यदि दूध पैदा करता है, तो घास-दाना दूसरी जगहसे मँगाता है; यदि सिलाई करता है, तो कपळा दूसरी जगहसे मँगाना होता है। मशीनोंकी ढलाई-सुधराई तो खैर दूसरी जगह पहले भी होती थी। आज-कलका सारा मनुष्य-समाज जिस प्रकारकी जीवन-सामग्रियोंसे परिपूर्ण है, उन सबके लिए यदि ऐसा न किया जाता, तो बहुत समयकी आवश्यकता होती। आज जिस प्रकार कुल चार घंटे काम करके ही मनुष्य सारी आवश्यकताओंको प्राप्त कर बाकी बीस घंटे जीवनके अन्य

आनन्दोंके उपभोगमें लगाता है, वैसा वह कब कर सकता था? यंत्रोंका न उपयोग करते, तो इतना प्राप्त करना असम्भव था, चाहे सारा भी समय उसीके लिए क्यों न समर्पण करना पळता। यंत्रोंके उपयोगको भी अधिक लाभदायक बनानेके लिए यह श्रम-विभाग उपयुक्त सिद्ध हुआ है। ऐसे पहले भी श्रम-विभाग कुछ तो हुआ ही था, किन्तु आजकलके लोगोंने इस सूत्रको और भी विस्तृत अर्थमें प्रयोग किया है।

पहले शासनोंमें रचनात्मक कार्योंकी अपेक्षा ध्वंसात्मक कार्योंहीकी मात्रा अधिक थी। जब कभी लळाई छिळ जाती थी, तब तो मानों इसका ज्वालामुखी फूट निकलता था।

इस विषयमें और कहनेसे पूर्व उचित प्रतीत होता है, कि वर्तमान शासन-व्यवस्थाके ढाँचेका कुछ जिक्र कर दिया जाय। सारे भूमंडलकी शासन-व्यवस्थाका मूल-ढाँचा ग्रामकी शासन-व्यवस्थाको समझिये। ग्राम-शासन-सभा—या जिसे संक्षेपमें ग्राम-सभा कहते हैं—में अपनी जन-संख्याके अनुसार सैकळे पीछे एक पंच चुननेका अधिकार है। यदि किसी गाँवमें पाँच हजार आदमी हैं, तो वहाँकी ग्राम-सभाके पचास सभासद् होंगे। इस चुनावमें सम्मति देने तथा खळा होनेके लिए उस ग्रामके प्रत्येक नर-नारी समान भावसे योग्य हैं, यदि कोई मानसिक अथवा शारीरिक असमर्थता इसमें बाधक न हो। यह सभासद् फिर अपना सभापति या ग्रामणी, तथा × × × × सोलह सभासदोंकी कार्य-कारिणी समिति बनाते हैं। × × × × × × × × × × × × × इसी कार्य-कारिणीके हाथमें ग्रामकी आवश्यकता

और उत्पत्तिके देख-रेख तथा प्रबंधका भार रहता है। पहले एक वार कहा जा चुका है, कि ग्रामकी प्रत्येक श्रेणीका एक नायक होता है। यह नायक सौ परिवारों-द्वारा चुना जाता है, जिनमें अधिक-से-अधिक दो सौ व्यक्ति हो सकते हैं। दो सौसे कम इसलिए हो सकते हैं, कि शायद कुछ पुरुष-स्त्री अविवाहित हों। ग्राम-कार्य-कारिणी समिति इन नायकोंसे अपना बहुत-सा कार्य कराती है। शान्ति-भंग तथा अन्य आवश्यक समयमें यों तो सभीका कार्य शासन-सभाकी सहायता करना है, किन्तु इन नायकोंका उस समय यह प्रधान कर्तव्य होता है। पूर्व-कालकी पुलिसका कार्य इन्हींके द्वारा लिया जाता है। किसी कार्यके कारण अनुपस्थित होनेपर इनके स्थानपर ग्राममें सहायक नायक कार्य करते हैं। ग्रामके सभी व्यक्तियों-को भिन्न-भिन्न कार्यपर नियुक्त करना ग्राम-सभाकी सम्मति-अनुसार कार्य-कारिणीका काम है। यह आवश्यकतानुसार वैद्य, धाय, पुस्तका-ध्यक्ष, भोजनाध्यक्ष, भण्डारी आदि सभी विभागोंके प्रमुखोंको नियुक्त करती है। ग्राम-सभाके एक वारके चुने सभासदोंकी अवधि अधिक-से-अधिक तीन वर्ष है। यही अवधि यहाँसे सार्वभौम सभाके सभासदों तककी है। किन्तु शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओंके लिए चुने गये व्यक्तियोंके लिए यह नियम लागू नहीं है। इस प्रकार किसी शिक्षकको आजन्म अपने पदपर रहनेका अधिकार है, यदि उसने जनताकी दृष्टिमें कोई अक्षम्य अपराध न किया हो।

ग्रामोंके बाद बहुत-से ग्रामोंको मिलाकर पहले तहसील या सब-डिवीजन सभायें तथा कहीं-कहीं थाना सभायें थीं। किन्तु उनके टूटे सौ

वर्षसे ऊपर हो गये। ग्रामोंके सुन्दर प्रबन्ध, बिजलीकी सवारी-गाळियों तथा टेलीफोनोंका प्रति ग्राममें उत्तम प्रबन्ध होनेसे वस्तुतः जिलाकी दूरी अब तहसीलहीके बराबर रह गई है। जिस प्रकार प्रत्येक सौ आदमियोंपर एक आदमी ग्राम-सभाका सभासद चुना जाता है, वैसे ही बीस हजारपर एक आदमी जिला-शासन-सभाका सभासद् चुना जाता है। जैसे पटना जिलामें दस लाख आदमी रहते हैं और यहाँकी शासन-सभामें पचास सभासद् हैं। प्रत्येक पाँच सभासद्पर कार्य-कारिणीका एक सभासद् चुना जाता है। इस प्रकार पटना जिलाकी कार्य-कारिणीके दस सभासद हैं जिनके हाथमें क्रमशः निम्न दस विभाग हैं—

१—शिक्षा;

२—स्वास्थ्य, जन-संख्या-सावधीकरण;

३—शान्ति-व्यवस्था, न्याय;

४—अर्थ;

५—दूसरे जिलों तथा स्थानोंसे लेन-देन;

६—कृषि, शिल्प-व्यवसाय;

७—यंत्र-गृहादि-निर्माण और सुधार;

८—डाक, तार, रेल, विमान;

९—पुरातत्त्व-इतिहास-संरक्षण;

१०—प्रेस।

चुनाव होनेसे पहले जिलाकी ग्राम-सभायें तथा जन-साधारण-द्वारा उम्मेदवारोंके नाम आते हैं, जिन्हें जन-साधारणकी अभिज्ञता और विचारके

लिए चुनाव-तिथिसे पूर्व ही प्रकाशित कर दिया जाता है। पीछे उनके विषयमें प्रत्येक ग्राममें एक ही दिन, एक ही समय वोट लिया जाता है; फिर बहु-सम्मतिसे निर्वाचित पुरुषों तथा स्त्रियोंका नाम प्रकाशित कर दिया जाता है। किसी प्रकार अयोग्य सिद्ध होनेपर उस सभासद्को स्थानसे च्युत करनेका अधिकार उसके निर्वाचकोंको है। एक सभासद्के निर्वाचनका हल्का पृथक्-पृथक् होता है। पटनामें ऐसे-ऐसे पचास हल्के हैं। जिलेका जिस जगह सदर रहता है, वहाँके लोगोंका प्रधान काम जिला-शासन-सम्बन्धी कार्योंका करना है। लिखने-छापने आदिका काम, पुराने कागज-पत्रोंको सुरक्षित रखनेका काम, शासनके अनेक विभागोंके काम, सभी वहींपर होते हैं। यद्यपि प्रति तीसरे वर्ष जिला-शासन-सभाके सभासदोंका परिवर्तन हो जाता है, किन्तु भिन्न-भिन्न विभागोंके दफ़्तरोंके कार्यकर्त्ता, तथा अन्य कार्य-निर्वाहक पूर्ववत् ही वने रहते हैं। कार्य-कारिणीके सभासद् अपनी अवधि भर जिलाके प्रधान स्थानपर निवास करते हैं।

जिलाके विभागोंमें प्रथम, द्वितीयका कार्य तो नामहीसे स्पष्ट है। शान्ति-व्यवस्था-न्याय-विभाग शान्ति-स्थापन, अदालत और अपराधियोंको उचित दंड और सुधारका काम करता है। किसीकी व्यक्तिगत कोई सम्पत्ति न होनेसे अब तो दीवानीका शब्द ही उठ गया है। इसलिए कचहरी कहनेसे सिर्फ फौजदारी कचहरी ही समझना चाहिए। जैसे संसारसे और दूकानें उठ गईं, वैसे ही गवर्नमेंटकी स्टाम्पफरोशी, अमलोंकी पान-सुपाळी, वकीलोंका मिहनताना भी उठ गया। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दीके इस प्रतिष्ठित पेशेका तो एक दम ही पता नहीं है। अदालतका कमरा खुला हाल होता

है, जिसमें न्यूनातिन्यून दो विद्वान वृद्ध अनुभवी जज बैठते हैं। प्रत्येक अभियोग अपने ग्रामकी न्याय-पंचायत—जो ग्राम-सभा-द्वारा संगठित की गई एक समिति होती है—से होकर आता है, जिसमें या तो ग्राम-सभा अपना फैसला दे दिये रहती है, या आरम्भिक अनुसन्धानके वाद जिलाकी अदालतमें भेज देती है। वादी, प्रतिवादी गवाह सभी होते हैं। न्यायाधीश स्वयं हर वातकी गहराई तक पहुँचनेका प्रयत्न करते हैं। अभियोगोंकी संख्या वहुत ही कम होती है, इसलिए कचहरियोंकी चहल-पहल नहीं है। मुकदमें अपमान, मार-पीट अथवा खून इन्हीं तीन दफाओंमें खतम हो जाते हैं। फाँसी या प्राण-दंडकी सजाही अव एकदम उठा दी गई है, उसके स्थान पर अपराधियोंको किसी टापूमें मनुष्य-समाजके आनन्दसे वञ्चित करके रखा जाता है, जहाँ उसके भली प्रकार इलाज, शिक्षण आदिका प्रवन्ध होता है। किन्तु जव यह सिद्ध हो जाता है कि अव उसके स्वभावमें परि-वर्तन हो गया, अव वह समाजके लिए खतरनाक नहीं है, तो फिर उसे छोळ दिया जाता है। दूसरे अपराधोंके वन्दियोंके लिए प्रत्येक प्रान्तको एक जेल रखना पळता है, जहाँ उन्हें रखकर सुधारा जाता है।

पाँचवें विभाग-द्वारा जिलामें उत्पन्न वस्तुयें आवश्यकतावाले वाहरी स्थानोंमें भेजी जाती हैं, और दूसरे जिला तथा प्रान्त आदिसे आवश्यक वस्तुयें मँगाई जाती हैं। यह मानों जिलाके भीतर और वाहर वस्तुओंके वदलनेका द्वार है। वाकी दूसरे विभाग नामहीसे स्पष्ट हैं।

कई जिलोंके ऊपर प्रान्तीय शासन-सभा होती है। प्रत्येक दो लाख मनुष्योंपर इसका एक सभासद् चुना जाता है। निर्वाचनसे पूर्व नामजद

करनेका तरीका नीचेसे ऊपर तक एक-सा ही है। विहारमें दो करोळ स्त्री-पुरुष सम्मति देनेवाले हैं। इस प्रकार प्रान्तीय सभामें यहाँके एक सौ सभासद हैं। इसकी कार्य-कारिणीमें भी पूर्ववत् दस विभागोंके दस सभासद् या मंत्री हैं। इनके कार्य भी पूर्ववत् ही हैं, किन्तु क्षेत्र विस्तृत है। प्रान्तका न्यायालय अपीलका अन्तिम स्थान है। यहाँ भी कार्य-कारिणीके सभासदों तथा सभापतिका प्रान्तके मुख्य स्थानमें अपनी अवधि भर रहनेका नियम है। अन्य सभासद् केवल सभाकी बैठकोंके समयमें ही आते हैं।

प्रान्तोंके ऊपर देश-सभा है। इसके लिए प्रति दस लक्ष एक प्रतिनिधि चुना जाता है। भारतमें इस समय बीस करोळ सम्मति-दाता स्त्री-पुरुष रहते हैं, बाकी पाँच करोळ बीस वर्षसे कम तथा विद्यार्थी-अवस्थामें हैं। भारत-शासनकी कार्य-कारिणीमें भी वैसे ही दस आदमी कार्य-कारिणीके सभासद् होते हैं, जिन्हें अवधि-भर दिल्लीहीमें रहना होता है। किन्तु दो शताब्दी पूर्वके समान शिमला-निवास इन बेचारोंके भाग्यमें नहीं है। विभाग पूर्ववत् ही हैं, कार्य-क्षेत्र विस्तृत है।

इसके ऊपर सार्वभौम सभा है, जिसके लिए पचास लाखपर एक सभासद चुना जाता है। इस समय भूमंडलकी मनुष्य-गणना एक अरब अट्ठासी करोळ है, जिसमें अळतीस करोळ तो विद्यार्थी आदि हैं, बाकी डेढ़ अरब स्त्री-पुरुष सम्मतिदाता हैं। सार्वभौम सभाके तीन सौ सभा-सदोंमेंसे चालीस भारत भेजता है। सार्वभौमकी कार्य-कारिणीमें पन्द्रह सचिव हैं। सार्वभौम सभाके सभापतिको राष्ट्रपति कहते हैं। सार्वभौम सभाका स्थान दक्षिणी अमेरिकाके ब्राजील देशकी नारंग नदीके किनारे ठीक भूमध्य-रेखापर

हैं। यहाँहीकी अक्षांश-रेखा शून्य मानी जाती है। इस नगरका नाम सार्वभौम नगर है। इसे बसे आज सौ वर्ष हो गये। जिस दिन सार्वभौम शासन स्थापित हुआ, उसी दिन एक सार्वभौम संवत् भी चलाया गया। आजकल सम्वत् १०१ चल रहा है। सार्वभौम सभाके सभासदोंकी यात्रा वायुयानों द्वारा हुआ करती है। राष्ट्र-पति तथा कार्य-कारिणीके सभासद् अथवा सचिव अपनी अवधि भर सार्वभौम नगरमें रहते हैं। सार्वभौम सभाकी कार्यवाही सार्वभौमी भाषामें होती है। सार्वभौम नगरमें पचास सहस्र स्त्री-पुरुष रहते हैं। इनमें सभी देशोंके आदमी हैं, जो सभी भिन्न-भिन्न विभागोंके दफ्तरों तथा अन्य कार्योंमें नियुक्त हैं। सार्वभौम सचिवोंके हाथमें निम्न विभाग हैं—

१—शिक्षा

२—स्वास्थ्य

३—शान्ति-व्यवस्था

४—अर्थ

५—लेन-देन, परिवर्त्तन

६—कृषि

७—शिल्प-व्यवसाय

८—यंत्र

९—गृह-पथ-निर्माण आदि

१०—डाक-तार

११—यान-विमान

१२—मुद्रण

१३—जन-संख्या-नियंत्रण

१४—पुरातत्त्व-संग्रहालय

१५—रेकर्ड-इतिहास

मनुष्य-गणनाको अधिक बढ़ने न देनेका पिछली दो शताब्दियोंमें वहुत प्रयत्न हुआ है और उसमें पूर्ण सफलता हुई है। इस विभागका सम्वन्ध ऊपरसे ग्राम तक है। प्रत्येक दसवें साल मनुष्य-गणना तो होती ही है, इसके अतिरिक्त, जहाँ दो माससे ऊपरका गर्भ हुआ, उसकी सूचना और गणना भी इस विभाग-द्वारा वरावर पत्रोंमें निकलती रहती है। दो उद्देश्योंको लेकर यह विभाग कायम हुआ था, जन-संख्याकी वृद्धिको रोकना, और चिर-रोगी, राजरोगी-द्वारा सन्तान न उत्पन्न होने देना। दोनों ही उद्देश्योंको इसने पूर्ण किया है। आजकल जो एक भी कुष्ट, मृगी, उपदंश, ववासीर आदि रोगोंवाले आदमी नहीं मिलते, उसका कारण उक्त प्रयत्न ही है। ऐसी छूतकी वीमारियोंवाले रोगियोंको साधारण जन-समाजसे पहले अलग करके आरामके साथ रखने तथा उनकी चिकित्साका भी पूर्ण प्रवन्ध किया जाता है। इस प्रकार उन्हें अपने संसर्गसे रोग फैलानेका मौका नहीं दिया जाता। दूसरे, आगे सन्तान न हो, इसके लिए उनकी जनन-शक्तिको विशेष निर्धारित उपायोंसे नष्ट कर दिया जाता है। इस प्रकार मनुष्य-जातिके चिर-शत्रु इन वीमारियोंका उन्मूलन किया गया है। इतनेपर भी देखा गया, कि यदि कोई रुकावट न डाली गई, तो मनुष्य-संख्या वेतहासा बढ़ती ही जा रही है। विशेषज्ञोंकी समितिने पृथ्वीकी

औसत वार्षिक आमदनी निकाल बतलाई। मालूम हुआ, इससे पौने दो अरब से कुछ ही अधिक आदमी सानंद जीवन व्यतीत कर सकेंगे। फिर क्या था? यह भी हिसाबसे मालूम हो गया कि इतनी पैदाइशमें इतने तो मरनेवालोंकी जगह पूरा करते हैं, बाकी इतने केवल वृद्धि करते हैं। यदि प्रत्येक विवाहित दम्पति दो या तीन सन्तान ही उत्पन्न करें, तो यह वृद्धि रोकी जा सकती है। इसपर फिर वही जनन-शक्ति नाश करनेकी प्रक्रियाका प्रयोग किया गया। प्रत्येक स्त्री-पुरुषके बुढ़ापेके आरामका जिम्मा तो अब राष्ट्रपर है, इसलिए सन्तान उत्पन्न करनेकी बळी लालसा तो ऐसे भी कम हो गई है। और उक्त प्रक्रियासे केवल जनन-शक्ति मात्रहीका ह्रास होता है, बाकी सब तो पूर्ववत् ही रहता है। इसलिए इसे लोग स्वयं पसन्द करते हैं। पहले अनेक पुरुष इसके विरोधी थे। उनका कहना था कि वृद्धि तो अवश्य रोकी जानी चाहिये, किन्तु कृत्रिम उपायसे नहीं, संयम-नियमसे। दूसरे विचारवालोंका कहना था कि यह संयम इतना सरल कार्य नहीं, जिसे राष्ट्रके सभी जन पालन कर सकें। जब यह बात है, तो इसपर ढील देना एक प्रकारसे जनवृद्धिको ही पुष्ट करना है। राष्ट्र इस मृगतृष्णाके भरोसे अपनी आवश्यकताको पूर्ण करनेसे नहीं रुका रह सकता। अस्तु। इसका फल अब यह हो गया है, कि और कामोंकी भाँति जन-संख्याका घटाना-बढ़ाना भी राष्ट्र-कर्णधारोंके हाथमें वैसेही है, जैसे किसी बिजली-बत्तीका जलाना और बुझाना।

१४

नालन्दासे प्रस्थान

नालन्दामें पूरे एक पखवारे तक निवास करनेके बाद मैंने अपनी अगली यात्रा आरम्भ की। विश्वामित्रको वर्तमान और भूत जगत्का पूर्ण परिचय था, और वह मेरे भी पूर्ण परिचित हो गये थे। इसलिए मैंने अपनी यात्रामें उन्हें ही साथी चुना। उन्होंने भी बळी प्रसन्नता-पूर्वक इसे स्वीकार किया। आते समय यद्यपि पटना पळा था; किन्तु रात्रिका समय था, हमलोग वहाँ उतर न सकते थे, इसलिए उसके बारेमें कुछ न जान सके। अब अपनी यात्रामें नालन्दासे प्रथम पटना ही चलना निश्चित हुआ। यात्रा दिनमें की गई, इसलिए मार्गकी भूमिके दृश्य भी खूब दिखाई पळते थे। विश्वामित्र इधरके गाँव-गाँवसे परिचित थे। वह बीच-बीचमें गाँवोंके बारेमें बहुत-कुछ बतलाते जाते थे। नालन्दा पटनासे साधारण ट्रेन-द्वारा दो घंटेका रास्ता है। रास्तेमें आमोंके बाग बहुत देखनेमें आये। मैंने विश्वामित्रसे

कहा, कि पटनाके मालदह आम पहले भी बहुत मशहूर थे। उन्होंने बतलाया, अब आकार और स्वाद, दोनोंमें और भी उन्नति हुई है। यहांके आम सुमेरु (उत्तरीय ध्रुव)से कुमेरु (दक्षिणीय ध्रुव) तक पृथ्वीमें चारों ओर भेजे जाते हैं। विदेह, मगध और अंग, विहारके तीनों ही खंड संसारके आमों और लीचियोंके बगीचे हैं। इनकी अधिक भूमि तथा निवासियोंका अधिक अंश इन्हींकी खेतीमें लगा रहता है। तारीफ यह है, कि अब यह दोनों ही फल बारह मास तैयार होते रहते हैं, हर वक्त हजारों रेल-गाळियाँ इनसे लदी, बर्फसे सुरक्षित, एशिया और यूरोपके भिन्न-भिन्न भागोंमें दौळती रहती हैं। रेलोंका जाल तो एकमें एक लगा, आस्ट्रेलिया तथा और द्वीप-समूहों को छोळ, सारे भूमंडलमें बिछा हुआ है। काठमाण्डव (नेपाल), दार्जिलिंग और सदिया इन तीनों रास्तोंसे हिमालयको पारकर रेल तिब्बतमें घुसी है। तिब्बतमें बहुत दूर तक रेल है। अब तिब्बती लोगोंमें वह मलिनता नहीं रही। वह क्या, अब तो भूमंडलका कोई भी मनुष्य-पुत्र स्वच्छता, सभ्यताके मानव-गुणोंसे वंचित नहीं है। सभीके लिए शिक्षा और सुख-सामग्री बराबर वितरण की जाती है। तिब्बतसे मंगोलियामें तांता बिछाती रेलवे लाईन अल्ताई पर्वतको पारकर साइबेरिया पहुँच जाती है। मंगोलियासे मंचूरिया और चीनके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें रेलें गई हैं और फिर युन्-नान् होती यनाम, स्याम और बर्मामें फैल गई हैं। बर्माका सम्बन्ध फिर रेलोंसे चटगाँव और आसाम प्रान्तसे हो गया है। यही नहीं, बर्मासे मलाया होते समुद्रमें सुरंगसे सिंगापुर और सुमात्राको भी मिला दिया गया है।

तिब्बतसे पश्चिमकी ओर तुर्किस्तानके यारकन्द, काशगर होती ताशकन्द, समरकन्द, फिर अफगानिस्तान, ईरान, तुर्की और अरबमें रेलोंका जाल विछा है। यूराल पर्वतको कितने ही स्थानोंपर पारकर रेलें रूसमें घुसी हैं। इधर कुस्तुन्तुनियामें समुद्रपर पुल वाँध, एसिया और यूरोप मिला दिये गये हैं। फ्रांस और इंग्लैण्डके वीचमें भी समुद्रमें सुरंगवाली रेल-लाइनें विछी हैं। स्वेज नहरकी सुरंगवाली रेलसे एशिया-अफ़्रीका जोळ दिये गये हैं। अफ़्रीकामें भी सव जगह रेलोंका जाल है। इधर पिछली शताब्दियोंमें 'सहाराकी' वालुकामय भूमिको अपार जल-राशिसे भरकर एक समुद्र तथा उसके आस-पास लाखों मीलकी मरुभूमिको हरी-भरी कर देना एक वळा आश्चर्यमय कार्य हुआ है। अफ़्रीकाकी जन-संख्या भी पहलेसे वहुत वढ़ गई है। आधा यूरोप वहाँ पहुँच गया है, इसके अतिरिक्त एशियाके भी वहुतसे आदमी वहाँ चले गये हैं। किन्तु अव वह पुराना वर्ण-भेद और देश-भेद नहीं। सव एक कुटुम्वकी भाँति रहते हैं। हब्शी, यूरोपियन, एशियाई सभी शिक्षा-दीक्षा आदिमें समान हैं और रंग आदिमें भी समान होते जा रहे हैं।

इस प्रकार तो रेल-मार्ग पूर्वीय गोलार्द्धमें विछा हुआ है। साइवेरियासे वेरिंग समुद्र-स्रोतको सुरंग-द्वारा पार करती हुई गाळी उत्तरीय अमेरिकाके अलास्का प्रान्तमें पहुँच जाती है। फिर तो कनाडा, संयुक्त राष्ट्र, मेक्सिको होती, पनामा नहरको सुरंगसे पार करती हुई गाळियाँ दक्षिण अमेरिकामें घुस जाती हैं,

यद्यपि इस प्रकार पृथ्वीका अधिक भाग क्या, आस्ट्रेलिया और अन्य छोटे टापुओं तथा जापानको छोळ सभी भू-प्रदेश रेलोंसे जोळ दिया गया है, किन्तु आसानीके साथ जहाज भी चीजोंके पहुँचानेमें बळा काम करते हैं। इनके अतिरिक्त दूर-दूरकी यात्रायें वायुयानों ही द्वारा होती हैं। मुख्य उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुवोंपर वस्ती हो गई है, जहाँ गर्मी या छः महीने वाले दिनमें लोग रहते हैं। ज्योतिप-शास्त्रके विशेषज्ञ तथा भौतिक तत्त्व-वेत्ता वहाँ अधिक जुटते हैं। यात्रा वायुयान-द्वारा होती है। आजकलके लोग स्काटके आत्म-वलिदानकी कथायें भले ही पढ़ लें, किन्तु क्या उस समयकी कठिनाइयोंका ठीक अनुमान वे कर सकते हैं?

विहार और पटनाकी यात्रा करते, वीचमें प्रसंग-वश यह भी बातें आ गईं। इसके कारण विहारके आम और लीची ही हैं। इन लगातार आम और लीचीके वागोंमें गुजरते हमलोग आखिर पटना पहुँच ही गये। सूचना पहलेसे पहुँच गई थी। विहार-शासन-सभाके सभापति साथी यूसुफ कतिपय अन्य सभासदोंके साथ स्टेशनहीपर स्वागतके लिए आये थे। स्वागतके वारेमें एक ही वार लिख देना चाहता हूँ कि प्रत्येक स्थानवालोंने एक दूसरेसे वाजी ले जानेका प्रयत्न किया। जव मैंने नगर देखा तो मालूम हुआ कि पाटलीपुत्र तो अलग रहा पटनाका भी वह पूर्ववाला आकार विल्कुल उलट-पलट गया है। सारे पटना शहरमें केवल पन्द्रह हजार आदमी रहतें हैं। अव उन तंग गलियों और सळकोंका नाम-निशान नहीं, न उन चौतल्ले-तितल्ले मकानोंहीका कुछ पता है। सभी रहनेके मकान ग्रामोंकी तरह हैं। फुलवाळी और वृक्षोंका भी वैसा ही शौक है। इससे जिस जगह, पहले हजार

आदमी रहते थे, अब मुश्किलसे पचाससे सौ आदमी तक रहते हैं। पटना विहार-प्रान्तका सदर है। यहाँ बहुतसे राष्ट्रीय दफ्तर हैं। छापाखाना बहुत भारी है। बिना-तारके-तारका बळा स्टेशन है। वायुयानोंका भी बळा अड्डा है। यहाँके सभी निवासियोंका प्रधान काम इन्हीं विभागोंमें काम करना है।

यद्यपि रहनेके घर सभी एक-महले हैं; तो भी दफ्तर कई-कई तलों वाले हैं। कागज-पत्रोंका जो रेकर्ड-आफिस है, वह तो पूरे पचास तलोंका है। नीचेसे सबसे ऊपरवाले तलपर पहुँचना परिश्रमका काम है, इसीलिए यहाँ वही विजलीका झूलाडोल ऊपर-नीचे जानेके लिए है। इस कार्यालयमें प्रान्तका प्रत्येक कागज बळे यत्नसे रखा गया है। कागजोंको आग आदिसे बचानेका पूरा प्रबन्ध है। इस दफ्तरमें विहार-सम्बन्धी अंग्रेजी शासनहीके कागज नहीं, मुसलमानकालकी भी बहुत-सी सनद आदि इकट्ठी की गई हैं। पटनाकी सबसे सुन्दर इमारत अशोक-भवन है। इसका नक्शा नालन्दाके वसुबन्धु-भवनहीका-सा है, किन्तु इसकी शोभा उससे और अधिक है। इसमें सोने और संगमर्मरका काम खूब देखनेमें आता है। विस्तार भी इसका 'वसुबन्धु-भवन' के इतना ही है। रंग-मंचके ऊपर बळे-बळे स्वर्णाक्षरोंमें लिखा है, 'एपे च मुख भुते विजये देवनं प्रियस यो ध्रम विजयो।'

१५

भारतके प्रान्त

पटनासे चलकर, यद्यपि मैंने वर्तमान भारतके सभी प्रान्तोंमें दो-दो, चार-चार दिन दिये, किन्तु सभी जगहोंकी बस्ती, रहन-सहन एक-सा ही देखा। यद्यपि मैं रोज अपने रोजनामचेमें अपने आस-पासकी चीजोंके विषयमें लिखता गया हूँ, किन्तु, यहाँ उसका उद्धरण करना पुनरुक्त मात्र समझ छोळ देता हूँ। अपनी यात्रा-क्रमसे, केवल सर्सरी तौरसे मोटे-मोटे परिवर्त्तनोंहीका, संक्षिप्त विवरण देता हूँ।

पटनाके साथ ही विहार प्रान्तको छोळ, मैं काशि-कोसल प्रान्तके बनारसमें गया। और परिवर्त्तनोंके साथ बनारसने भी बळा परिवर्त्तन खाया है। न वह काशीकरवटकी करवट है; न कचौळी-गली, न उसकी कचौळी।

गलियोंका तो एकदम नाम ही नहीं है। बळी चौळी-चौळी सळकें हैं। खुली हवादार जगहोंमें वही मकानोंकी शोभा है, जो पहले बतलाई जा चुकी है। यदि आज कोई आदमी बीसवीं शताब्दीके किसी मकानको ढूंढ़ना चाहे, तो नहीं मिल सकता। मुझे और भी उदासी मालूम हुई, जब मणिकर्णिका, दशाश्वमेध आदि पूर्वके गुंजान घाटोंपर गया। यद्यपि स्नानके अवसरपर अब भी बहुत-से स्नान करनेवाले आते हैं; सीढ़ियाँ पहलेसे भी सुन्दर और साफ हैं; बिजलीकी ताकतसे चलनेवाली कुछ नावें भी गंगामें सपाटे मारती दिखाई पळती हैं, किन्तु अब वह घाटियों और पण्डोंकी चहल-पहल कहाँ? अब वह 'गुरु'-'गुरु'की कहनाई और कुंडी-सोटेकी रगळाई कहाँ? नाइयों और मालियोंका भी पता नहीं। पता कैसे हो, इस समय तो जब पैसादेवहीका पता नहीं, तो उनके अनुचरोंका ठिकाना कहाँ? न अब दशाश्वमेधकी सट्टी है, न विशेश्वरगंजका गोला; न साँळों-मुष्टंडोंका पता। न अब तत्कालीन समाज-की-मारी हतभागिनी स्त्रियोंके दालमंडीके कोठे। लोगोंके रहनेके मकान वही एक-महले। ऐतिहासिक स्थानोंके चारों ओर खूब हरी-हरी खुली जगह दिखलाई पळती है। मंदिरोंको अब एक ऐतिहासिक चिन्ह समझ सुरक्षित रक्खा गया है। रुपये-पैसोंका तो चढ़ावा सम्हालना नहीं है। सारे बनारसमें इस समय केवल पचीस सहस्र नर-नारी निवास करते हैं, जो यदि पुराने मकान होते, तो एक कोनेहीमें आ जाते, किन्तु चौळी सळकों और एक-महले मकानों और फूलों आदिके कारण पुराने बनारस-भरमें फैले हुए हैं।

बनारसके पास दो और प्रसिद्ध बस्तियाँ हैं, एक तो बरना उस पार

तीन कोसपर 'ऋषिपतन मृगदाव'—जिसे पहले सारनाथ कहा करते थे—दस हजार आदमियोंकी बस्ती है। यहाँ अतिथि-विश्राम बहुत दूर तक बने हैं। बुद्धिवादी बुद्धके सर्व-प्रथम यहीं उपदेश करनेसे इसका माहात्म्य भारी है। सारे भूमंडलके नर-नारी यहाँ आते हैं। स्थान अब बहुत रमणीय हो गया है। पुराने ध्वस्तप्राय स्तूप बिल्कुल अब नये हो गये हैं। दूसरा स्थान है अस्सी उस पार काशी विश्व-विद्यालय। पहलेसे बहुत दूर तक इसका विस्तार है। अब पुरानी पाठशालायें तथा पंडितोंकी गृह-पाठशालायें तो हैं नहीं, किन्तु इससे विद्याप्रचारमें कोई कमी नहीं है। सभी विद्याओंका अध्ययनाध्यापन पूर्वसे भी अधिक व्यवस्थित रूपमें काशी-विश्वविद्यालयमें होता है। इसकी गणना भूमंडलके उच्च श्रेणीके विश्व-विद्यालयोंमें है। साहित्य और दर्शनमें उसकी बळी ख्याति है।

काशि-कोसल प्रान्तकी राजधानी प्रयाग है। गेहूँकी खेती तथा आम, अमरूद, बैरके बागोंकी यहाँ अधिकता है। खासकर बनारस जिलेमें उपरोक्त फल बहुत होते हैं।

इसके अतिरिक्त चीनी भी इस प्रान्तमें बहुत होती है। पहलेसे नहरें यहाँ बढ़ गई हैं, किन्तु आबादी घट गई है।

इन्द्रप्रस्थ। इसमें सूरसेन, कुरु, पांचाल, मत्स्य चार विभाग हैं। सूरसेन और मत्स्य कमिश्नरियोंमें बीसवीं शताब्दीकी अनेक रियासतें भी सम्मिलित हैं। अब उन रियासतोंका कुछ भी चिन्ह नहीं रहा। भारतकी राजधानी दिल्ली इस प्रान्तकी भी राजधानी है, किन्तु खास शहरमें पचास ही हजारकी बस्ती है। स्वच्छता-सुन्दरतामें बढ़ी-चढ़ी है। पुरानी इमारतें

खूब सुरक्षित अवस्थामें हैं। गेहूँ, चीनी, घी इस प्रान्तसे और जगहोंमें भी जाता है। तराईकी ओर कागजके बहुत-से ग्राम हैं।

पंजाब। कश्मीर भी इसीमें शामिल है। राजधानी लाहौर है। तक्ष-शिला विद्यालयने फिर अपनी प्राचीन कीर्तिको लौटा पाया है। आयुर्वेद-शास्त्रमें उसकी ख्याति सम्पूर्ण भूमंडलमें है। गेहूँ तथा और अनाज, एवं चीनीके अतिरिक्त यह प्रान्त मेवे बहुत पैदा करता है। उत्तर तरफ पर्वतीय जन-पदोंमें भेळोंके बहुत-से ग्राम हैं। ऊनी कपळोंके बहुत-से बळे-बळे कारखाने हैं। इसी ओर बिजली उत्पन्न करनेके भी बहुत-से स्थान हैं।

राजस्थान। इसमें पुराने राजपूतानेकी सारी रियासतोंके देश सम्मिलित हैं। सबसे भारी परिवर्त्तन, अनेक रियासतोंके एक होनेके अतिरिक्त, मरु-भूमिका हरे-भरे मैदानके रूपमें परिणत होना है। सिन्धकी बळी नहरने, बीकानेरके पानी बिना जलकर बालू हो गये कलेजेको ठंढाकर, यह परिवर्त्तन किया है। अजमेर इस प्रान्तकी राजधानी है।

सिन्धु। पैदावार फल और अनाज दोनोंहीकी है। राजधानी करांची, जहाज और विमान दोनोंका बळा अड्डा है। यहाँसे मैं गुजरात, मध्यप्रान्त और उत्तर महाराष्ट्रमें गया। तीनों प्रान्तोंमें कपासकी खेती बहुत अधिक होती है। कपळोंके कई एक बळे-बळे कारखाने हैं। पुरानी हैदराबाद-रियासत, उत्तर महाराष्ट्र, दक्षिण महाराष्ट्र, कर्नाटक और आन्ध्र इन चार प्रान्तोंमें बँट गई है। इन प्रान्तोंमें भी कपास और कपळोंके कारखाने हैं। किन्तु चावल, चीनीकी पैदावार बहुत है। द्रविळ और केरलके अतिरिक्त लंका भी अब भारतहीमें सम्मिलित है। इनके अतिरिक्त उत्कल, वंग,

आसाम, वर्मा और हिमालय पाँच प्रान्त और भारतके हैं। सभी जगहोंकी व्यवस्था-अवस्था बहुत ही सुन्दर है। निवासी आनन्दित तथा वसुन्धरा वसुन्धरा है। जगह-जगह बहुत-से विद्यालय और विश्वविद्यालय हैं।

१६

वर्तमान जगत्‌से उठ गई चीजें

पहले किसी प्रकार भी धनी बननेकी बीमारीका बळा प्रकोप था। उस समय लोगोंको ऐसा करनेकी स्वाधीनता भी थी। उस समय किसी वस्तुका मूल्य राष्ट्रीय आवश्यकतापर निर्भर नहीं था। धनकी इच्छावाले धनिक इस बातकी कब परवाह करने लगे थे, कि अमुक व्यवसायसे देशका श्रम तथा जीवन बर्बाद होगा, या सार्थक? वह तो यह देखते थे कि बाजारमें माँग किस चीजकी है। बस, उसीकी तैयारीके लिए बळे-बळे कारखाने खोल देते थे, जिनमें लाखों आदमी काम करते थे। शराब, सिगरेट, अफीम यद्यपि हानिकारक वस्तुयें थीं, किन्तु उनकी उपजके लिए लाखों आदमी और लाखों बीघे भूमि बझी रहती थी। भला आजकल वह बात कहाँ चल

सकती थी? यहाँ तो सिद्धान्त ठहरा, जीवनकी सभी आवश्यक, अहानि-कारक, आनन्दप्रद सामग्रीके यथेष्ट संग्रहमें जहाँ तक हो सके कम-से-कम समय लगाया जाय, ताकि अवशिष्ट समयको लोग अपनी इच्छानुसार, अपने ईप्सित और कार्योंमें लगा सकें। पहले जैसे दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिलोंकी बहुत भूमि तम्बाकू पैदा करनेमें लगी रहती थी, अब वहाँ तम्बाकू का नाम नहीं। सिगार, सिगरेट, बीळियोंके कारखानोंका पता नहीं। शराब, अफीम ही नहीं, गाँजा, भाँग, चरस, ताळी आदि कितनी ही वस्तुयें आजके संसारमें पढ़कर तथा वस्तु-संग्रहालयोंहीमें जाकर देखी जा सकती हैं। चाय, काफी, कहवा भी अब व्यर्थका व्यसन समझा जाकर विदा हो चुका है। खानेमें छोटे-बळे आदमीका भेद न होनेसे, साँवाँ, कोदो, मळुआ (रागी), मोटे चावल आदि कितने निम्न श्रेणीके अन्न नहीं बोये जाते। खानेके लिए फल, अनाज, जो कुछ भी पैदा किये जाते हैं, उत्तम श्रेणीके। कपळे-लत्ते, घर-द्वार, सवारी, बार-बरदारीमें भी यही बात है।

पैसेका नाम उठ जाने, तथा वैयक्तिक सम्पत्तिके न रह जानेसे फल-फूल, खेत-बारी, कल-कारखाना सब कुछ राष्ट्रीय है; और इसीलिए अब उतने कानूनोंकी भी भरमार नहीं। इन्कमटैक्सका कानून, बन्दोबस्त कानून, कोर्टफीस, आबकारी, काश्तकारी, लगान, ज्वाइंट-स्टाक-कम्पनी, आदि-आदि सैकळों कानूनोंका अब कामही नहीं है। दीवानी मामलोंकी जळ ही खतम हो गई, क्योंकि धन-धरती किसी व्यक्तिकी है ही नहीं। फौजदारीके कानूनका आकार भी बहुत घट गया है, क्योंकि धन-धरतीके अपहरण-विषयक चोरी-डकैती आदि अपराध अब सम्भव ही नहीं। एक

व्यक्तिका दूसरे व्यक्तिको शारीरिक या मानसिक हानि पहुँचानेका कारण अव नाम-मात्र ही रह गया है, क्योंकि इन सबकी जळ वही व्यक्तिगत स्वामित्व था। शिक्षाका उत्तम प्रवन्ध, रोगोंकी उत्कृष्ट चिकित्सा, नीरोग हृष्ट-पुष्ट माता-पिताकी वैसी सन्तान होना, इत्यादि वह कारण हैं, जिनसे, जिन कोनोंसे पहले कितने अपराध हो भी पळते, आज अपराध वहाँ नहीं या नहींके वरावर होते हैं। अव अपराधोंके दो ही मुख्य कारण हैं, मनुष्य-प्रकृतिकी जव तवकी उद्धतता और अज्ञानता, तथा स्त्री-पुरुषके सम्वन्ध। किन्तु इनसे भी पहलेकी अपेक्षा शतांश भी अपराध नहीं हो पाते; कारण है—मनुष्य-प्रकृतिका वहुत भारी सुधार हो जाना, तथा स्त्री-पुरुषोंका एकदम वरावर समझा जाना। आजकल स्त्रीपर पुरुषका उतना ही अधिकार है जितना पुरुषका स्त्रीपर। दोनों केवल प्रेमके वन्धनसे वँधे हैं। जिस प्रकार दाम्पत्य वन्धन प्रेमके ही द्वारा वँधा है, वैसेही वह तभी तक स्थिर भी समझा जाता है, जव तक कि वह प्रेम है। प्रेमके अभावमें इस वन्धनका सर्वथा उच्छेद हो जाता है। जव पति-पत्नीको एक-दूसरेकी आर्थिक पराधीनता नहीं, समाजके विरोधका भय नहीं, तो फिर वह कव और कितने दिनों तक दिखलावेके दम्पती बने रह सकते हैं? इसका एक यह भी फल हुआ है कि अव पहलेकी तरह गुप्त व्यभिचारकी अधिकता नहीं।

आजकलके संसारमें कितने ही पेशोंका भी अस्तित्व नहीं है। वकील, मुख्तार, सोख्तार, वैरिस्टर ही नहीं; मोची, भंगी, रंडी (वेश्या), भँळुये, भिखमंगे, पंडे, भाँट, मुजावर, कसाई, दूकानदार आदि भी अव नहीं रह